उपन्यास
और लोक-जीवन

उपन्यास
और
लोक-जीवन

लेखक

रैल्फ फॉक्स

भूमिका लेखक

डॉ० रामविलास शर्मा

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटड

एम. एम. रोड, नई दिल्ली.

भूमिका

रैल्फ फॉक्स यदि जीवित होते तो आज सत्तावन वर्ष के होते। बायरन की तरह ब्रिटेन के बाहर स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए छत्तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्राण दिये। वह लेखक होने के साथ सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे। यूरोप में नवजागरण काल के सिडनी, बेन जॉनसन और मिल्टन की तरह उनका जीवन बहुमुखी था। हिंसक फासिस्तवाद के विरुद्ध कलम के साथ तलवार उठाने में उन्हें जरा भी हिचक न थी। फॉक्स को अपने देश की सांस्कृतिक परम्परा पर गर्व था। उनके बलिदान में १६-१७ वीं सदी के नवजागरण और बीसवीं सदी के श्रमिक अभ्युत्थान की परम्पराएं मिल गयी थीं।

पूंजीवाद के हिंसक और युद्धलोलुप अभियान के विरुद्ध फॉक्स ने स्पेन में संघर्ष किया। वह विश्वशान्ति के लिए लड़नेवाले योद्धा थे। इस कारण भारत की शान्ति-प्रेमी जनता के हृदय में उनके लिए आदर और सम्मान होना स्वाभाविक है। आदर के साथ उनके प्रति स्नेह और कृतज्ञता का भाव भी होना चाहिए। वह अन्य उपनिवेशों के साथ भारत की स्वाधीनता के भी प्रबल समर्थक थे। अपने चार्टिस्ट पूर्वजों की तरह वह भी भारत की स्वाधीनता के बिना ब्रिटेन के मजदूर वर्ग का उद्धार असंभव समझते थे। "ब्रिटिश साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक नीति" नाम की कृति में उन्होंने लिखा था: "भारत तथा अन्य उपनिवेशों में जन-क्रान्ति के बिना समाजवादी ब्रिटेन की कल्पना नहीं की जा सकती।" ब्रिटेन के क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की इस आवाज को वहां का पूंजीवाद कभी भी पूरी तरह नहीं दबा पाया।

फॉक्स के लिए मानव-जीवन और साहित्य का सम्बंध अटूट था। वह जिस उत्साह से मानव-जीवन को बदलने के लिए काम करते थे, उसी

उत्साह से साहित्य के बारे में भी लिखते थे। वह भावना-शून्य वर्ग-विश्लेषक और आकड़ेबाज आलोचक न थे। साहित्य के बारे में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसमें उनका हृदय बोलता है। पाठक को विश्वास हो जाता है कि उन्होंने साहित्य को अपनी मार्मिक सवेदना और हृदय की पूर्ण निष्ठा से अपनाया है। इस सवेदना के कारण ही वह "सौन्दर्य-वादी" कवि कीट्स के युगान्तरकारी महत्व को परख सके। अधिकाश आलोचकों ने कीट्स को जीवन से तटस्थ रहनेवाले काल्पनिक सौन्दर्य-स्वप्नों के उपासक के रूप में देखा है। इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में फॉक्स ने लिखा है कि प्रतिक्रियावादी आलोचकों ने जिस प्रचड घृणा से कीट्स को कोसा, वैसी घृणा से उन्होंने बायरन और शेली को भी न कोसा था। केवल फॉक्स ही लिख सकते थे कि कीट्स ने "हाइपीरियन" की अपूर्ण कविता में क्रान्तिकारी सघर्ष का सारतत्व दे दिया है। एक मार्क्सवादी आलोचक के स्वतत्र चिंतन और उसकी रचनात्मक प्रतिभा का यह प्रमाण है।

मार्क्सवाद और साहित्य के सम्बध पर अपने विचार प्रकट करने के अलावा फॉक्स ने यूरोप के अनेक उपन्यासकारों की रचनाओं का विश्लेषण किया है। वह एक अग्रेज देशभक्त होने के साथ सच्चे अन्तरराष्ट्रीयतावादी थे। बालजाक, तोल्स्तोय और गोर्की उनके लिए सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार थे। ये तीनों लेखक ब्रिटेन के बाहर के थे। सोवियत समाज के प्रशसक और समर्थक होते हुए भी फॉक्स ने सोवियत उपन्यास-कारों के बारे मे लिखा था कि ये लेखक हमारी मानव सम्बधी जानकारी नही बढाते, वे वास्तव में हमारी चेतना और संवेदना का प्रसार नहीं करते। जो लोग समझते हैं कि मार्क्सवादी आलोचक सोवियत सघ की किसी भी चीज कि आलोचना नहीं करते, वे फॉक्स के शब्दों पर ध्यान दे सकते हैं। फॉक्स की स्पष्टवादिता अन्तरराष्ट्रीय भाईचारे का खडन नहीं करती, वरन् उसे और दृढ करती है। फॉक्स ने सोवियत उपन्यास-कारों की खामियों को कुछ बढा-चढाकर देखा है, यह दूसरी बात है।

साथ ही फॉक्स को अपनी भाषा के साहित्य पर जातीय गर्व था। अग्रेजी सस्कृति, अग्रेजी सभ्यता, अग्रेजी साहित्य पर गर्व। हमारे देश

में इन वस्तुओं का सम्बध अंग्रेज शासक वर्ग और उसके चाकरों से अधिक रहा है। अंग्रेज वैसे ही देशभक्त हो सकता है जैसे कोई भी भारतवासी। वह अपनी सस्कृति पर वैसे ही उचित गर्व कर सकता है जैसे हम भारतीय सस्कृति पर करते हैं। फॉक्स ऐसे ही अंग्रेज देशभक्तों में थे। उन्होंने अपने देश के प्रगतिशील लेखकों को साहित्यिक परम्परा पर गर्व करना सिखाया। चरित्रचित्रण के लिए जब सोवियत लेखक शेक्सपियर को आदर्श रूप मे सामने लाते हैं तो फॉक्स को स्वाभाविक उल्लास होता है। १८ वीं सदी के उपन्यासकार फील्डिंग की प्रशंसा करते वह नहीं थकते।

यह देश भक्ति, फॉक्स की अन्तरराष्ट्रीयता, साहित्य के प्रति उनका सच्चा अनुराग, उनका उत्साह और उल्लास और स्पष्टवादिता सभी लेखकों के लिए अनुकरणीय हैं।

फॉक्स ने साहित्य की समस्याओं पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया है। इस सिलसिले में उन्होंने मार्क्स और एंगेल्स की स्थापनाओं को स्पष्ट रूप से पाठकों के सामने रखकर कुछ भ्रान्तियों को दूर किया है। कुछ लोग समझते हैं कि मार्क्सवाद के अनुसार कलाकृतियां आर्थिक प्रक्रियाओं और आवश्यकताओं का प्रतिबिंब मात्र हैं। इस सम्बंध में फॉक्स ने जोर देकर कहा है कि यह मार्क्सवाद का दृष्टिकोण नहीं है, यद्यपि उन्नीसवीं सदी के कुछ भौतिकवादी ऐसा सोचते थे। वह सामाजिक विकास से उदाहरण देकर कहते हैं कि सामन्ती उत्पादन-पद्धति की तुलना में पूंजीवादी उत्पादन पद्धति प्रगतिशील है, इससे मार्क्स ने यह परिणाम न निकाला था कि सामन्ती कला की तुलना में पूंजीवादी कला अधिक ऊंचे स्तर की होगी ही। कला आर्थिक आधार से काफी दूरी पर स्थित होती है, आर्थिक आधार में जो परिवर्तन होते हैं उनसे कला सीधे-सीधे और तुरत प्रभावित नहीं होती।

इस दूरी का कारण क्या है? आर्थिक और राजनीतिक विचारधारा की तरह कला में भी शीघ्र परिवर्तन क्यों नहीं होते? इसका कारण विचारधारा और कला का परस्पर सम्बंध है। सभी ललित कलाओं में विचारधारा का महत्व समान रूप से नहीं होता। भाषा के बिना विचारों

की व्यंजना नहीं होती। जिन ललित कलाओं में भाषा का प्रयोग नहीं होता, उनमें विचारों का अभाव होना भी अनिवार्य है। साहित्य में भाषा का प्रयोग होता है, इसलिये अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा उसमे विचारधारा की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। किन्तु साहित्य विचारों का सकलनमात्र नहीं है। अन्य ललित कलाओं के साथ उसकी विशेषता है, भावों और इन्द्रियबोध को व्यक्त करने की क्षमता। वह एक ओर हमें भावविह्वल करता है तो दूसरी ओर हमारे इन्द्रियबोध को तुष्ट करता है, हमारे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि के सस्कारों को परिष्कृत करता है। मनुष्य के विचारजगत में भी ऐसा परिवर्तन नहीं होता कि परम्परा से एकबारगी सम्बध टूट जाय। भावों और इन्द्रियबोध के क्षेत्र में तो यह परिवर्तन और भी धीरे-धीरे होता है और उत्पादन-पद्धति के परिवर्तनों से अपेक्षाकृत स्वतत्र रहता है। कला की सापेक्ष स्वतन्त्रता का यही रहस्य है। वह समाज-निरपेक्ष नहीं होती, उसका विकास सामाजिक विकासक्रम के अन्तर्गत ही होता है। किन्तु वह सामाजिक विकासक्रम से पूर्णतः नियमित नहीं होती, वह पूर्णतः आर्थिक आधार का प्रतिबिंब नहीं होती। इसीलिये प्राचीन कला-कृतिया अपने सूक्ष्म इन्द्रियबोध और भावप्रवणता के कारण हमे आज भी मोहक लगती हैं।

साहित्य के विभिन्न अगों की अभिव्यजना-शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। गीत या मुक्तक में सामाजिक जीवन का उतना और उसी तरह चित्रण नहीं हो सकता जितना और जिस तरह उपन्यास में। इस सम्बध में फॉक्स की उक्ति ध्यान देने योग्य है। उनका कहना है कि मनुष्य के जीवन को सर्वांगीण रूप मे जितना उपन्यास चित्रित कर सकता है, उतना साहित्य का दूसरा अग नहीं कर सकता।

वास्तव में कथा कहने और सुनने का रस ही अलग होता है। 'राम कथा जे सुनत अघाहीं, रस विशेष जाना तिन नाहीं।' कथा का अपना विशेष रस होता है यद्यपि मनुष्य को आतमविभोर करने की काव्य-शक्ति की तुलना में वह निम्न ही ठहरता है। साथ ही मानव-जीवन की विविधता को जितनी विशदता से उपन्यास चित्रित कर सकता है, उतनी

विशदता से काव्य नहीं कर सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा था, "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तिया उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।" पाठक देखेंगे कि उपन्यास की विशेषता के सम्बंध में फॉक्स की स्थापना शुक्ल जी की उक्ति से पुष्ट होती है।

साहित्य की विषयवस्तु की तरह उसके रूप भी सामाजिक विकास से सम्बद्ध हैं। यूरोप मे उपन्यास की रचना पूजीवादी युग में हुई। फाक्स ने उपन्यास को पूँजीवादी साहित्य का अपना विशिष्ट रूप कहा है। उनके अनुसार आरम्भ में महान पूँजीवादी साहित्य रचा गया। वह यह भी कहते हैं कि उस समय साधारणत· पूँजीवादी वर्ग हितों और राष्ट्रीय हितो में साम्य था। फॉक्स के लिए अठारहवीं सदी अंग्रेजी उपन्यास साहित्य का स्वर्ण युग था, कारण यह कि पूँजीवादी क्रान्ति ने अंग्रेजी दर्शन की सृष्टि की और अंग्रेजी उपन्यास साहित्य इस दर्शन से प्रभावित था। क्या वास्तव में अंग्रेजी उपन्यास साहित्य पूँजीवादी संस्कृति का अंग है? मार्क्स ने पूजी के लिए लिखा था कि उसका अंग-प्रत्यंग रक्त में डूबा हुआ है। उस रक्तरंजित पूजी से महान साहित्य की रचना कैसे सम्भव हुई? फॉक्स ने एक जगह शेक्सपियर, मार्लो और मिल्टन के लिए भी लिखा है कि अभ्युदयशील पूंजीवादी वर्ग की संस्कृति उनकी रचनाओं में झलकी है।

इस सम्बंध में पहले तो इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इगलैंड मे १८ वीं सदी के अन्त तक सत्ता पूजीपति वर्ग के हाथ में न थी। सत्ता भूस्वामी वर्ग के हाथ में थी जिनके राजनीतिक प्रतिनिधियों को हम उन्नीसवीं सदी मे पार्लियामेंट सम्बंधी सुधारों का विरोध करते पाते हैं। जो पूँजीपति सत्ता मे साझेदार थे, वे भी मुख्यत· व्यापारी व सौदागर थे, न कि सर्वहारा वर्ग के शोषक उद्योगपति। उस समय पैसा कमाने का सबसे कारगर तरीका भारत जैसे देशों से व्यापार करना था, न कि

इगलैण्ड का तैयार माल यहा बेचना। १८ वी सदी मे औद्योगिक क्रान्ति के बाद लगभग एक शताब्दी के सघर्ष के बाद ही उद्योगपति सत्ता हथिया सके। इस उलझी हुई परिस्थिति में यह समझना कि १६ वीं सदी से ही अभ्युदयशील पूजीवाद शेक्सपियर और मिल्टन जैसे कलाकारो को अपना वर्ग-प्रतिनिधि बना सका, सही नहीं मालूम होता। पूजीवाद आरम्भ से ही अन्तर्विरोधों से पीड़ित था और १६ वीं सदी से ही अग्रेजी के महान लेखकों ने उसकी बराबर तीव्र आलोचना की थी। यह भी ध्यान देने की बात है कि अग्रेजी पूजीवाद ने कभी सामन्तवाद का सुसगत विरोध नहीं किया। उसने किसानों को तबाह किया लेकिन सामन्तों से गठबन्धन किया। सास्कृतिक क्षेत्र में उसके राजनीतिक प्रतिनिधि ड्यूकों और लॉर्डो को सदा अपना आदर्श मानते रहे। इगलैण्ड के इतिहास में कोई भी ऐसा दौर नहीं है, जब किन्हीं ईमानदार साहसी पुरुषों ने पूजीवाद की खरी आलोचना न की हो। फिर भी फॉक्स की सवेदनाए अपनी जगह सही हैं। सवेदनाओं के आधार पर की हुई व्याख्या ध्यान देने योग्य है।

फील्डिग पर अपने एक लघु निबन्ध में फॉक्स ने लिखा है कि यद्यपि उसका जन्म अभिजात वर्ग में हुआ था किन्तु उसने गरीबी में दिन बिताये और उसे बराबर सघर्षों का सामना करना पड़ा। उसने अपने समय की न्याय-व्यवस्था का विरोध किया। उसने अपने समय की समाज व्यवस्था की तीव्र आलोचना की। 'जोनाथन वाइल्ड' नामक उपन्यास के एक अध्याय के लिए फॉक्स ने लिखा है: "वह अब तक पूजीवादी राजनीति का सबसे तीखा खडन है।" प्रस्तुत पुस्तक के पाचवे अध्याय मे फाक्स ने फीलिंडग के भयानक क्षोभ और क्रोध की चर्चा की है। यह क्रोध मानव जीवन के पतन से उत्पन्न हुआ था और उस पतन मे पूजीवाद का भी हाथ था। इस तरह पूजीवाद के अभ्युदय-काल का श्रेष्ठ उपन्यासकार फीलिंडग पूजीवादी समाज व्यवस्था का तीव्र आलोचक सिद्ध होता है।

फॉक्स के अनुसार १६ वीं सदी के पूर्वार्द्ध पर बालजाक छाया हुआ है। उसका कारण यह कि उसने अपने युग का क्रान्तिकारी चित्र दिया

है। दूसरे फ्रांसीसी उपन्यासकार फ्लोबेयर में फॉक्स के अनुसार पूंजीपति वर्ग के प्रति घृणा भरी हुई थी। थैकरे के लिए उन्होंने लिखा है कि वह नये पूंजीपति-वर्ग से घृणा करता था और तीखे व्यंग्य द्वारा उसने अपनी घृणा स्पष्ट ही प्रकट कर दी थी। फॉक्स के लिए १९ वीं सदी के तीन सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं, 'वुदरिंग हाइट्स,' 'जूड दि ऑब्सक्योर' और 'दि वे ऑफ ऑल फ्लेश'। ये महान इसलिए हैं कि इनमें यह सत्य उद्घाटित किया गया है कि पूंजीवादी समाज में भरापूरा मानव जीवन असंभव है। १९ वीं सदी के तीन सर्वश्रेष्ठ उपन्यास पूंजीवादी समाज-व्यवस्था से घोर असंतोष प्रकट करते हैं। इस तरह फॉक्स ने अंग्रेजी उपन्यास साहित्य की क्रान्तिकारी भूमिका स्पष्ट की है। इंगलैण्ड और यूरोप के उपन्यासकारों ने जनता के दुखदर्द को देखा और अपने साहित्य में उसका कलात्मक चित्रण किया। उनकी विचारधारा में भले उलझनें रही हों, वे पूंजीवादी समाज व्यवस्था के खरे आलोचक थे, इसमें संदेह नहीं।

डिकेन्स और स्काट १९ वीं सदी के दो सबसे लोकप्रिय उपन्यासकार थे। चरित्र निर्माण में इनके कौशल को फॉक्स ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। इस कौशल का रहस्य क्या था? इसका रहस्य जनसाधारण के चरित्र की पहचान, उनके मानस में पैठने की अपूर्व क्षमता और शब्दों में उसे चित्रित करने की सामर्थ्य थी। उनके 'हीरो' और 'हीरोइन' भले ही काल्पनिक हों, उनके साधारण पात्र सदा सजीव होते हैं। इसीलिए उनमें इतनी विविधता है। उपन्यासकार के जीवन-दर्शन का महत्व होता है, किन्तु गलत दृष्टिकोण होने पर भी अपनी सहानुभूति, संवेदनाओं और सामाजिक जीवन की जानकारी के बल पर उपन्यासकार श्रेष्ठ कृतियां दे सकता है। बालजाक १९ वीं सदी के पूर्वार्द्ध पर छाया हुआ था और तोलस्तोय उस सदी के उत्तरार्ध पर हावी थे—इन दोनों का ही दार्शनिक दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी था। कलाकार के लिए मूल वस्तु है संवेदना, सामाजिक जीवन से व्यापक परिचय, अपने पात्रों से उचित अनुपात में सहानुभूति या घृणा। इनके साथ सही जीवन दर्शन भी हो तो कहना ही क्या! किन्तु उन मौलिक गुणों के बिना सही जीवन दर्शन के आधार पर कोई महान कलाकार नहीं बन सकता।

कारों से सीख सकते हैं। शोलोखोव, अलेक्सी तालस्ताय, फादेयेव आदि लेखकों ने तालस्ताय की कला से बहुत कुछ सीखा और अपने युग की परिस्थितियों का चित्रण करने में उस कला का उपयोग किया। उनकी लोकप्रियता ने सिद्ध कर दिया कि उन्होंने अपनी परम्परा से सही नाता जोड़ा था।

यह हर्ष की बात है कि हिन्दी में व्यक्तिवाद की ओर से उपन्यासकार मुह मोड़ रहे हैं। श्री इलाचद्र जोशी अन्तस्तल के विशेषज्ञ थे। उन्होंने "जहाज के पछी" में बाह्य परिस्थितियों को नियामक माना है जिनसे तरह-तरह के पाप और दुराचार सभव होते हैं। नागार्जुन, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव आदि की कृतिया उस स्वस्थ मार्ग पर हिन्दी कथासाहित्य को बढा रही हैं जिसका निर्माण प्रेमचद ने किया था। ये सभी लेखक समाज में फैली हुई वीभत्सता को उघाड़कर पाठक को तिलमिला देते हैं, साथ ही अपने-अपने ढग से वे मानव जीवन में आस्था भी उत्पन्न करते हैं। फॉक्स ने कथा साहित्य को मानव जीवन के विकास का साधन माना था। हिन्दी में वह साधन और साध्य दोनों है।

यह प्रसन्नता की बात है कि फॉक्स जैसे विचारक का यह ग्रथ श्री नरोत्तम नागर जैसे प्रसिद्ध लेखक और सिद्ध अनुवादक द्वारा हिन्दी पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें उल्लिखित अनेक समस्याए हिन्दी के लेखकों और पाठकों को आन्दोलित कर चुकी हैं। निःसन्देह उन्हें यहा सीखने समझने और सोचने के लिए बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री मिलेगी।

आगरा
२१–८–५७

रामविलास शर्मा

सूची

साहित्यिक लेख

एक

विषय प्रवेश

यह दावा करना गलत होगा कि प्रस्तुत निवध कला और जीवन के पारस्परिक सम्वधो के समूचे व्यापक क्षेत्र पर प्रकाश डालता है। नहीं, यह इससे अधिक सीमित लक्ष्य को लेकर चलता है अग्रजी उपन्यास कला की वर्तमान स्थिति की जाच करना, विचारो के उस सकट को समझने का प्रयत्न करना, जिसने उस नीव को ही नष्ट कर दिया है जिस पर कि एक समय उपन्यास इतनी दृढता से स्थापित था; और उसके भविष्य पर एक दृष्टि डालना।

यहा यह वता देना कदाचित् उपयुक्त होगा कि मैं उपन्यास कला के भविष्य में विश्वास करता हू, हालाकि इसका वर्तमान वहुत ही अस्थिर प्रतीत होता है। यह हमारी सभ्यता की महान लोक कला है, हमारे पूर्वजों के महाकाव्य और *शांशों दा जेस्ट*[1] की उत्तराधिकारिणी है, और यह वरावर जीवित रहेगी। लेकिन जीवन का अर्थ है परिवर्तन, सम्भव है कि ये परिवर्तन, कम-से-कम कला के क्षेत्र में, सदा उन्नति की दिशा में न हो, किन्तु परिवर्तन तो वे हैं ही। ये परिवर्तन ही, जिनके विना उपन्यास अपनी जीवन्त शक्ति को कायम नही रख सकते, प्रस्तुत पुस्तक का विषय हैं।

मानव इतिहास मे अनेकानेक नयी कलाओ ने जन्म लिया है, उदाहरण के लिए जैसे सिनेमा। किन्तु अव तक कोई भी कला पूर्णतया मरी नही। मानव अपनी चेतना के हर विस्तार मे, हर उस वस्तु से जो

वास्तविक जगत के प्रति — जिसमें कि वह रहता है — उसकी सवेदन-शीलता को प्रखर बनाती है, चिपका रहता है। उपन्यास एक नयी कला भी है। यह सच है कि इसकी जडे अतीत में बहुत दूर तक — *त्रिमालचियो के भोज*[1], *डार्फनिस और क्लो*[2] और कदाचित् इससे भी दूर हेरोडोटस तक गयी हैं, किन्तु अपने-आप में एक विशिष्ट कला के रूप में अपने अस्तित्व के औचित्य से युक्त, अपने ही नियम-कायदो से सम्पन्न, तथा सार्वभौम मान्यता और सराहना-प्राप्त कला के रूप में यह हमारी अपनी सभ्यता की, और सबसे बढकर छापेखाने की, देन है।

माना कि यह साहित्य का केवल एक अग ही है, किन्तु यो तो एक तरह से नाटक भी साहित्य का एक अग है, फिर भी अपने-आप में एक विशिष्ट कला के रूप में नाटक को उसका गौरव प्रदान करने से कोई भी इन्कार नही करेगा। उपन्यास केवलमात्र कथात्मक गद्य नही है, वह मानव के जीवन का गद्य है — ऐसी पहली कला है, जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। श्री ई एम फार्स्टर[3] ने बताया है कि उपन्यास को अन्य कलाओ से अलग करनेवाली महान विशेषता यह है कि उसमें गुप्त जीवन को प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। इस प्रकार यह कला कविता, या नाटक, या सिनेमा, या चित्रकला, या सगीत से यथार्थ का एक भिन्न दृश्य प्रस्तुत करती है।

ये सब कलाए यथार्थ के उन पहलुओ को व्यक्त कर सकती हैं जो कि उपन्यास की पहुच से बाहर हैं। किन्तु इनमें से कोई भी व्यक्तिगत पुरुष, स्त्री अथवा बच्चे के सम्पूर्ण जीवन को उतने सतोषप्रद रूप में व्यक्त नहीं कर सकती। इसके कार्यकारणो पर, इसी निबध में, मैं अ यत्र प्रकाश डालूगा। यहा केवल इस तथ्य का उल्लेख तथा पाठको से फिलहाल इसे मान लेने का अनुरोध करना ही काफी होगा।

उपन्यास कला क्या सचमुच इतनी सकट-ग्रस्त है कि लोग उसके बारे मे पुस्तकें लिखने पर बाध्य हो, तथा ध्यान आकर्षित करने के लिए गला फाड कर ऐसे चिल्लाना शुरू कर दें जैसे कि हम किसी आदमी को खतरे की दिशा में बढते हुए देखकर चिल्लाते हैं? यह सही है कि इस धधे से सम्बधित अधिकाश लेखक इस बारे मे अब एकमत हैं कि अग्रेजी

उपन्यास बुरी स्थिति में फसा है, और यह कि वह वस्तुत दिशा-भ्रष्ट और उद्देश्य-विहीन हो गया है। उपन्यास, जिसका सर्वोपरि आधार यह है कि वह खूब पढा जाय, अब तेजी से अपठनीय होता जा रहा है।

निश्चय ही इसका अर्थ यह नहीं है कि चवन्निया पुस्तकालयों का कारबार ठप्प होने जा रहा है। उपन्यास तो आज भी खूब पढे जाते हैं, पहले से अधिक पढे जाते हैं, किन्तु पढ़े वही जाते हैं जो अपठनीय हैं। चूकि कूटोक्ति से भूखे आदमी का पेट नही भरता, इसलिए स्थिति को —जैसा कि मैं उसे समझता हूं—खोल कर रखने का श्रय न करूगा।

सबसे पहली बात तो यह कि सकट गुणों के ह्रास का सकट है। निस्सदेह, अत्यत लोकप्रिय उपन्यास पैदा करने वाले लेखकों की सख्या आज जितनी अधिक है उतनी पहले कभी नहीं थी। वे ऐसे उपन्यास लिख रहे हैं जो हमारी तात्कालिक कामना को गुदगुदाते हैं, जिन्हें हम रेडियो के चालू न होने पर (या उसके चालू होने पर भी) खुशी से पढ़ते हैं, रेल-यात्रा करते समय, या समुद्र के किनारे, एक बार पढ कर जिन्हें हम सदा के लिए भूल जाते हैं, या फिर एकदम याद न रहने के कारण धोखे में हम उन्हें फिर उठा लेते हैं और आधा पढ जाने के बाद एकाएक याद आता है कि अरे, यह तो हमारा पढा हुआ है। ऐसे उपन्यासो से—यों सयोगवश उनकी चर्चा हो जाना दूसरी बात है—यहा हमारा कोई सरोकार नहीं है। कारण कि वे यथार्थ का चित्रण नहीं करते।

कहने को तो इन उपन्यासो के लेखक भी एक वास्तविक जगत का चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत वास्तविकता का परिमाण—उस आकस्मिक सयोग को छोडिये जिसका सम्बध लेखक से न होकर किसी व्यक्तिगत परिस्थिति से होता है, किसी ऐसी वस्तु से होता है जो पुस्तक में नहीं, बल्कि पाठक में है—इतना काफी नहीं होता कि वह हमें बरबस झझोड डाले, हमारी तमाम भावनाओं को चौकन्ना तथा मस्तिष्क को चौकस बना दे और हमें उन लोगों के देश में ले जाय जो देखते हैं, और उनकी आखों से देखने के बाद उस अनुभव को हम फिर कभी न भूल सके।

आज उपन्यास-आलोचक को, सप्ताह प्रति सप्ताह, मीलों तक फैली मुद्रित पन्नों की निर्जन तथा उबा देने वाली दलदल में छटपटाना, और निरे नकली भावों तथा अनगढ़ यौन-सम्बन्धों के ऊहापोह से भन्नाकर घृणा के साथ मुह फेर लेना पडता है। मि सिरिल कोनोली का, जो स्पष्टवादिता में अन्य कतिपय आलोचको से कही आगे हैं, कहना है कि जिन पुस्तकों की वे आलोचना करते हैं, उन्हें पढ जाना उनके लिए बहुधा पूर्णतया असम्भव होता है। परिणाम इसका यह कि उनके रोचक लेख, आम तौर से और हमारे सौभाग्य से, स्वय मि कोनोली से जितना अधिक सम्बध रखते हैं उतना उस उबा देने वाली कच्ची सामग्री से नही जो कि मि कोनोली के लिए जैसे-तैसे दो जून पेट भरने का साधन बनती है।

यह देख कर आश्चर्य होता है कि बुरी पुस्तको की यह बाढ पढने वाली जनता में वृद्धि का फल नही है। बल्कि यह उन तौर-तरीकों का फल है जिनसे कि हमारे प्रकाशक पाठको की आए दिन बढती हुई सख्या की रुचि को तुष्ट करते हैं। पाठक को अब वह नही मिलता जो कि वह चाहता है, बल्कि उसे उसी को चाहना पडता है जो प्रकाशन का दैत्य उसे प्रदान करता है।

इन भीमाकार तथा अत्यधिक यन्त्रीकृत प्रकाशन गृहो को, जो बहुधा अपने निजी छापेखानों तथा जिल्दसाजी के विभागों से, और आधुनिक व्यापार के लिए अत्यन्त आवश्यक—बैंक से मोटी-ताजी रकमें (ओवर ड्राफ्ट) लेने की क्षमता से भी युक्त होते हैं, अपने आपको चालू रखने के लिए बाध्य होकर पुस्तको की ताक में रहना पडता है। उन्हे अधिकाधिक पुस्तकें चाहिए। जहा तक हो सके उपन्यास चाहिए। कारण कि उपन्यास लेखक को उतना पैसा नहीं देना पडता जितना कि गैर-उपन्यास साहित्य के लेखक को, फिर लागत भी उस पर अधिक नहीं आती—सस्ते में ही किताब तैयार हो जाती है, और पुस्तकालयो के रूप में उन्हें तैयार बाजार भी मिल जाता है, बशर्ते कि इस बात की गारन्टी की जा सके कि पुस्तक मौलिकता से पूर्णतया शून्य है।

प्रकाशकों की प्रकाशन सूची में शीर्षकों की अधिकाधिक वृद्धि होती रहनी चाहिए। इसके बिना वे एक-दूसरे से होड़-युद्ध में टिक नहीं सकते। उनके लिए अधिकाधिक किताबें छापना जरूरी है ताकि उनके छापेखाने व्यस्त रहें, या जिनके पास निजी छापेखाने नहीं हैं वे उन मुद्रकों को तुष्ट रख सकें जो कि उनका काम करते हैं। क्या छपता है, इसकी उन्हें विशेष चिन्ता नहीं। कूडा हो या धूल में छिपा रत्न, एक ही तरह के टाइप में तथा एक ही कागज पर वह छपेगा, जिल्द भी एक ही प्रकार के कपडे की बनेगी, एक-सा ही आवरण उसकी रक्षा करेगा और उन्ही पुराने पुस्तकालयों को वह बेचा जाएगा। दोनो ही सूरतो में प्रकाशक अपना ढोल पीट कर उसे उत्कृष्ट कलाकृति घोषित करेगा, और अधिकांश आलोचक—जो दूध-पानी अलग करने के निराशापूर्ण काम को एक मुद्दत से छोड चुके हैं—उस क्षण के अपने मूड अथवा प्रकाशक के साथ अपने निजी सम्बधो के अनुसार कुछ घटा या बढा कर प्रकाशक के मूल्यांकन को ही अलस भाव से स्वीकार कर लेंगे।

पुस्तक प्रकाशन से लाभ बटोरने के इस भारी खेल में स्वयं लेखक एक निरा शून्य बनकर रह गया है। जब उसकी पुस्तकें बिकती हैं तो उसे एक महत्वपूर्ण विभूति घोषित किया जाता है, जिससे उसकी स्वतत्रता में कुछ वृद्धि तो होती है, फिर भी वह खेल का केवल एक अग ही बना रहता है—होता केवल यह है कि अब उसे व्यवसाय के प्रचार पक्ष के हवाले कर दिया जाता है। व्यापारिक पक्ष अब उसकी कुछ आवभगत करता है, किन्तु आवभगत से भी—यदि वह सावधानी से की जाय—अच्छा मुनाफा बनाया जा सकता है।

इस व्यवसाय के प्रचार पहलू के बारे में—माह की श्रेष्ठ पुस्तक वाले विभिन्न क्लबो तथा टोडीपने के बारे में, पत्र-जगत को मुट्ठी में रखने की कला और रेड़ियो द्वारा साहित्य की "सेवा" करने के बारे में—भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। किन्तु इनका यहा उल्लेख करना निरर्थक होगा। कारण कि प्रस्तुत निबंध के उद्देश्य से उनका दूर का ही सम्बध है।

लेखक और पाठक के रूप में जिस तथ्य में हमारी दिलचस्पी है, वह यह है कि प्रकाशन व्यवसाय अब बडी पूजी वाले व्यवसायो का एक

अभिन्न अग बन गया है। इसके लिए प्रकाशकों को दोष देना मूर्खता होगी। बडे-बूढो के शब्दों में उन्हें "जीवन के तथ्यों" से बाध्य होकर ही यह स्थिति ग्रहण करनी पडी है। यहा केवल इतना ही नोट करने की आवश्यकता है कि साहित्य पर, और विशेष रूप से उपन्यासो पर, इसका निन्दनीय प्रभाव पडा है। पुस्तक व्यवसाय में से यह लक्ष्य गायब हो गया है कि उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित की जाए, और उसके आसन पर परिमाण ने दखल कर लिया है।

किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण सकट एक और है—दृष्टिकोण का सकट, जिसने स्वय उपन्यासकारों को ग्रस रखा है। बुरे उपन्यासो तथा घटिया कृतियो की भीषण बाढ़ के बावजूद आज अच्छे उपन्यासकार, ईमानदार कलाकर्मी, भी रचना कर रहे हैं। डी एच लौरेन्स को मरे अभी कुछ ही दिन हुए हैं। जेम्स जॉय्स[1] और ई एम फार्स्टर अभी जीवित हैं। रैबेका वैस्ट,[2] अल्डस हक्सले[3] तथा आधे दरजन के करीब अन्य लेखक आज भी गम्भीरता और स यता के साथ उपन्यास लिखने में जुटे हैं। यह इस समय हमारी बहस का विषय नहीं कि इस कार्य में उन्हें कितनी सफलता मिली है।

गम्भीर लेखक को आज गहरी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। अन्य सब कलाकारों की तुलना में लेखक ही अपने देश को अधिक व्यक्त करता है। उसके उपन्यास अनूदित होते हैं और समूची दुनिया में पढ़े जाते हैं। वेल्स, किपलिंग, गाल्सवर्दी और कानराद की कृतियो के आधार पर ही कल के इग्लैण्ड को विदेशों में परखा जाता था। आज के इग्लैण्ड को परखा जाता है मुख्यत हक्सले के आधार पर, और उनके बाद उन गिने-चुने युवक लेखको के आधार पर, जिनकी कृतियो को अनुवाद का सौभाग्य अभी अभी प्राप्त हो रहा है।

फलत उपन्यासकार का अपने देश के वर्तमान तथा अतीत—दोनो के प्रति एक विशेष दायित्व होता है। अतीत से मिली विरासत उसके लिए महत्वपूर्ण है। उससे पता चल जाता है कि देश की सास्कृतिक विरासत के वे कौनसे अश हैं जो आज भी सार्थक हैं। वर्तमान के बारे
ो कुछ कहना है, उसका भी महत्व है, कारण कि उससे आशा

की जाती है कि वह अपने युग के अत्यत जीवत तत्वो को व्यक्त करेगा। यहा पर आपत्ति की जा सकती है कि उपन्यासकार का इस बात से कोई सरोकार नही कि अन्य लोग उसकी कृतियों के बारे में क्या कहते हैं, विरासत में वह क्या प्राप्त करता है, और वह क्या व्यक्त करता है, यह उसका एकदम निजी मामला है।

यदि यह अकेले उसका निजी मामला हो, तब भी अपनी कृति के प्रति बाहरी दुनिया की प्रतिक्रियाओं मे वह अपने आप को अलग नही रख सकता। एक ऐसी दुनिया में जहा अत्यत अहवादी तथा विनाशकारी रूपों में राष्ट्रीयता अधी दौड लगा रही है, राष्ट्रीयता के प्रति हर गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण लेखक का रवैया महत्व रखता है। और आज के प्रत्येक गम्भीर अग्रेज लेखक के लिए यह एक अत्यत गौरव की बात है कि वह इसे समझता है, और यह कि उनमें से अधिकाश तत्सम्बन्धी समस्याओ के बारे में पूरी गम्भीरता से सोचते हैं।

क्या लेखक धर्म की खातिर देश को तिलाञ्जलि दे दे ? मि एवलिन वौघ ने ऐसा ही किया, और देखा कि ऐसा करने पर वह केवल एक दूसरे देश की राष्ट्रीयता की तैयार गोद में पहुच गये हैं। स्पष्ट है कि आज रोमन कैथोलिक धर्म का अर्थ है फासिस्ट इटली का—आधुनिक राज्यों में जर्मनी के बाद सबसे अधिक आक्रमणात्मक, सबसे ज्यादा अहंवादी तथा क्रूर राज्य का—समर्थन करना। लेखक फिर क्या करे—क्या वह डी एच लौरेन्स के रक्त और नस्ल वाले सिद्धान्त के अनिवार्य परिणामों को शिरोधार्य करे ? ऐसा करने पर हो सकता है कि वह अन्त में नाजी सस्कृति का और उसके मध्यकालीन यत्रणागृहो तथा युद्ध द्वारा "आध्यात्मिक" उत्थान के गौरव गान का समर्थन करने लगे।

मि वौघ ने जेस्यूट शहीद एडमण्ड कैम्पियोन[1] की जीवनी लिखी है और उन्हें हौथार्नडन पुरस्कार से—उन दो पुरस्कारों में से एक से जो कि किसी अग्रेज लेखक को मिल सकते हैं—सम्मानित किया गया है। किन्तु क्या शेक्सपीयर अथवा मारलो भी कैम्पियोन को शहीद समझते ? अथवा क्या वे इस विचार की ओर न झुकते कि उस समय, जब कि इग्लैण्ड अपने राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए लड रहा था, जब कि इग्लैण्ड

उन परिस्थितियो के लिए लड रहा था जिनकी बदौलत हमारी राष्ट्रीय सस्कृति का सृजन हुआ, वह ऐसे कामो में लगा रहा जिनका श्रेष्ठतम परिचय शेक्यपीयर की निम्न पक्तियो से दिया जा सकता है

"समय के मूर्ख,
जिनकी मृत्यु मे भलाई है, जिये जो अपराध के लिए।"

स्पष्ट है कि आज के लेखक में यह परखने की बहुत ही पैनी क्षमता होनी चाहिए कि सच्ची राष्ट्रीयता क्या है और कोरी राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्र-विरोधिता क्या है। अतीत हो चाहे वर्तमान, दोनो को ही हमें परखना है। हमे अपने अभियान में अतीत को साथ लेकर चलना है, इसलिए यह देखना आवश्यक है कि उसका बोझ इतना अधिक न हो कि हम दब कर रह जाए। अतीत से हम वही चुने जो इतना वास्तविक हो कि काम आ सके और बाकी को फिलहाल छोड दें—उसे अपने साथ न लें जो केवल बाधा देने वाला हो।

दृष्टिकोण के सकट का दर्शन से सम्बध है, और इसलिए रूप से भी है। युद्धोपरान्त अधिकाश अग्रेज लेखको के दार्शनिक विचारो पर यूरोपीय उदारपथियो की अन्तिम कडी—सिगमण्ड फ्राएड[1]—का गहरा प्रभाव पडा है। फ्राएड द्वारा विकसित मनोविश्लेषण बौद्धिक अराजकता की चरम सीमा और व्यक्तिवाद का मोहनी मत्र है। निश्चय ही इसने पिछले बीस सालो मे अग्रेजी उपन्यास को जितना अधिक प्रभावित किया है, उतना अन्य किन्ही विचारो ने नही। साथ ही इसने अग्रेजी उपन्यास को लगभग पूरे बौद्धिक दिवालियेपन की स्थिति में ला पटका है, हालाकि अनेक उल्लेखनीय मौलिक कृतिया ऐसी भी है जो बहुत कुछ फ्राएडवादी विश्लेषण द्वारा व्यक्ति के उद्घाटन के कारण ही प्रभावशाली बन पाई हैं।

सबसे अन्तिम प्रश्न जो आज उपन्यासकार को मथता है, वह समाज से सम्बध रखता है। क्या कोई उपन्यासकार इस दुनिया की समस्याओ से, जिसमे कि वह रहता है बेखबर रह सकता है? क्या वह युद्ध की तैयारियो के शोर-शराबे की ओर से अपने कान बद कर सकता है? क्या वह अपने देश की स्थिति की ओर से अपनी आखे मूद सकता

है ? क्या वह उस समय अपना मुह बद रख सकता है जब कि चारो ओर विभीषिका मडरा रही हो और व्यक्तिगत लालसा को अक्षुण्ण रखने के लिए वचनबद्ध राज्य के नाम पर जीवन को दो जून रोटियों से भी वचित किया जा रहा हो ?

अधिकाधिक उपन्यासकार अब यह अनुभव करने लगे हैं कि आंखें, कान और वाणी वस्तुत चेतना के सवेदनशील अग हैं जो मानवीय जगत से अनुप्राणित होते हैं, और यह कि वे किसी आध्यात्मिक जगत के—परम्परा से चले आए तथाकथित 'कला'-जगत के—निष्क्रिय चाकर मात्र नही हैं। वे समझने लगे हैं कि वे एक ऐसे समय में रह रहे हैं, जिसमें कि छोटी-मोटी बातो को छोडिए, खुद मानवता के भाग्य का निर्णय किया जा रहा है, और यह सुन कर गहरे विक्षोभ से तिलमिला उठते हैं कि वे, जिनका परम्परागत गौरव सदा उनका मानवतावाद रहा है, मानव के भाग्य के बारे में परेशान न हो!

यह भी उनसे छिपा नही है कि सभ्यता के भविष्य के बारे में दो महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रचलित हैं। एक दृष्टिकोण का विश्वास है कि सभ्यता व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर, तानाशाही राष्ट्रवादी राज्य के रूप में व्यक्त युद्ध और पागल अहवाद के वातावरण में, विकसित होती रहेगी। दूसरे दृष्टिकोण का विश्वास है कि मानवता सामाजिक सम्पत्ति पर आधारित उन नये मूल्यो के लिए सघर्ष कर रही है, जो युद्ध को बहिष्कृत तथा राष्ट्रवाद का अत कर देंगे और उनकी जगह पर एक विश्वसभ्यता के अन्तर्गत एक-दूसरे से सहयोग करते हुए स्वस्थ राष्ट्रो के उन्मुक्त विकास का रास्ता खोल देंगे।

अधिकाश लेखक, न्यूनाधिक मात्रा में, दूसरे दृष्टिकोण की ओर झुके हैं। उनमें से अनेक—वे जिनकी दृष्टि औरो की तुलना में अधिक साफ है, अनुभव करते हैं कि इस तरह की नयी सभ्यता का उदय मुख्यत उस सघर्ष के फलस्वरूप होगा जिसे आज मजदूर वर्ग चला रहा है, और यह कि इस नयी सभ्यता के प्रारभिक चिन्ह अभी भी सोवियत सघ में देखे जा सकते हैं। इस अनुभूति ने उनमे मार्क्सवाद, जो मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी हिस्से का तथा सत्रह करोड की आबादी से युक्त महान

और रोम के दास-राज्यो की अथवा प्राचीन पूर्वीय शहनशाहितो की कला के मुकाबिले में सामन्ती कला का सिंहासन ऊचा होना चाहिए। इस तरह के मोटे तथा भोंडे विचारो का मार्क्सवाद की समूची आत्मा से दूर का भी वास्ता नही है।

मार्क्स का यह कहना ठीक ही था कि समाज के भौतिक आधार में हुए परिवर्तनो को आर्थिक इतिहासज्ञ पदार्थ विज्ञान की भाति सही सही जाच सकता है (स्पष्ट ही इसका मतलब यह नही है कि इन परिवर्तनो का वैज्ञानिक रूप से निर्धारण होता है), किन्तु जीवन के ऊपरी सामाजिक तथा आध्यात्मिक ढाचे में हो रहे परिवर्तनो की ऐसी कोई वैज्ञानिक नापतोल नही की जा सकती। परिवर्तन होते हैं, लोगों को उनका बोध होता है, नये और पुराने के बीच द्वन्द्व का वे अपने दिमागो में "निबटारा" करते हैं। किन्तु यह निबटारा वे इतने असम, अतीत से विरासत में मिले हर किस्म के बोझ से दबे, बहुधा अस्पष्ट रूप में तथा सदा ऐसे तरीके मे करते हैं कि लोगो के दिमागों में हो रहे परिवर्तनो का आसानी मे पता नही लगता।

उदाहरणार्थ, यह सच है कि फ्रास की क्राति द्वारा सम्पन्न सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनो की अभिव्यक्ति *कोड नैपोलियन* के रूप में हुई। किन्तु इस तथ्य की जानकारी, अपने-आप में, *कोड नैपोलियन* को स्पष्ट नही करती। इसके लिए फ्रास के इतिहास तथा क्राति से पहले उस देश में वर्गों के सम्बधो को समझना भी आवश्यक है, इसके लिए स्वय क्राति के विकासक्रम और वर्ग-सम्बधो में उसने जो परिवर्तन किये, उन्हे समझना आवश्यक है, और सबसे अन्त में नैपोलियन की फौजी तानाशाही को समझना आवश्यक है। केवल तभी यह बात समझ में आ सकती है कि *कोड नैपोलियन* किस प्रकार नये बुर्जुआ समाज तथा फ्रास की उस औद्योगिक क्रान्ति की कानूनी अभिव्यक्ति थी जिसका नैपोलियन-काल में सूत्रपात हुआ। और कानून भावगत ऊपरी ढाचे का सम्भवत सबसे अधिक प्रभावशील अग है, उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन के अनुसार यह अत्यत आसानी के साथ बदल जाता है। किन्तु कला का आधार

से बहुत दूर का नाता होता है, और परिवर्तन का उस पर कही कम आसानी के साथ प्रभाव पडता है।

ऐंगल्स ने १८९० में जे ब्लॉक को लिखे अपने एक पत्र में इस सिलसिले में बहुत ही ज़ोरदार शब्दो में अपना मत प्रकट किया था:

"इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार वास्तविक जीवन में उत्पादन और पुनरोत्पादन ही *अन्ततः* इतिहास के निर्णयात्मक तत्व हैं। इससे बडा दावा न तो मार्क्स ने किया है और न मैंने। इसलिए यदि कोई इसे तोड-मरोडकर यह कथन गढ़ता है कि आर्थिक तत्व ही *एकमात्र* निर्णयात्मक तत्व है, तो वह उसे एक निरर्थक, निराधार और बेहूदा फिकरा बना देता है। आधार आर्थिक स्थिति है, किन्तु ऊपरी ढाचे के विभिन्न तत्व — वर्ग-सघर्ष तथा तज्जन्य परिणामो के राजनीतिक रूप, सफल लडाई के बाद विजयी वर्ग द्वारा कायम विधान, आदि—कानून के रूप — और यहा तक कि युद्धरत पक्षों के दिमागो में इन समस्त वास्तविक सघर्षों की प्रतिक्रियाए राजनीतिक, कानून सम्बधी और दार्शनिक सिद्धान्त, धार्मिक विचार और आगे विकसित होकर रूढिग्रस्त पथो के रूप में उनकी परिणति, — ऐतिहासिक सघर्षों के विकास क्रम पर ये सब भी अपना असर छोडते हैं और अनेक दृष्टान्तो में उनका *रूप* निर्धारित करने में ये सबसे बडी भूमिका अदा करते हैं। इन तमाम तत्वो में क्रिया-प्रकिया चलती है जिसमें, आकस्मिक घटनाओ के अन्तहीन *ताते* के बीच (अर्थात् ऐसी घटनाओं के बीच जिनका अन्तर्सम्बध इतने दूर का अथवा उसे सिद्ध करना इतना असम्भव होता है कि हम उसे अनुपस्थित समझ कर नजरदाज कर सकते हैं) आर्थिक प्रक्रिया अन्तत. आवश्यक तत्व के रूप में उभर आती है। अगर ऐसा न होता तो इतिहास के किसी भी मनचाहे काल पर उक्त सिद्धान्त का प्रयोग गणित के साधारण से साधारण योग से भी अधिक सहज हो जाता।"[१]

इसलिए, जहां मार्क्सवाद आर्थिक कारणों को ही किसी परिवर्तन का प्रतिम और निर्णयात्मक प्रकरण मानता है, वहा वह इस बात से इन्कार नही करता कि 'भावगत' प्रकरण भी इतिहास के क्रम को प्रभावित कर सकते हैं, यहां तक कि परिवर्तनों का रूप (लेकिन केवल रूप ही) निर्धा-

रित करने में उनकी भूमिका प्रमुख भी हो सकती है। यह कहना केवल मार्क्सवाद का उपहास करना है कि वह कलात्मक रचना जैसे मानव चेतना के आध्यात्मिक तत्व के महत्व को कम करके आकता है। इसी प्रकार यह दावा करना कि मार्क्स कला-कृतियो को भौतिक तथा आर्थिक प्रकरणो का प्रतिविम्व समझते थे, मार्क्स का मजाक उडाना है। उन्होने ऐसा कभी नही समझा। वह खूब अच्छी तरह समझते थे कि धर्म, या दर्शन, या परम्परा, एक कला की रचना में भारी योग दे सकती है। यहा तक कि इनमें से किसी एक या अन्य "भावगत" तत्व की उस कृति-विशेष के रूप निर्धारण में प्रमुख भूमिका हो सकती है। किन्तु उन सब तत्वो में, जिनसे एक कलाकृति की रचना होती है, केवल आर्थिक प्रक्रिया ही ऐसी है जो *अंततः* अनिवार्य प्रकरण के रूप में अपने आपको प्रकट करती है। जिस वात को मार्क्स और ऐंगेल्स ऐतिहासिक परिवर्तनो के लिए सच मानते थे, कलात्मक रचनाओं के लिए भी वे उसे सच मानते थे।

मार्क्सवाद के विरुद्ध बहुधा यह आपत्ति की जाती है कि वह व्यक्ति की भूमिका को नहीं मानता, उसे केवल ऐसी निराकार आर्थिक शक्तियों का शिकार समझता है जो उसे भाग्य-चक्र की अनिवार्यता के साथ एक निश्चित अन्त की ओर धकेल रही हैं। इस प्रश्न पर हम यहां कुछ नहीं कहेंगे कि इस धारणा के आधीन कि वाह्य भाग्य मानव को एक अनिवार्य अन्त की ओर ले जा रहा है, कलाकृति की रचना असम्भव है अथवा नही। कदाचित् कालविनिज्म कभी महान कला पैदा नही कर सका है, किन्तु भाग्य और कयामत की धारणा को इसका श्रेय प्राप्त है— ग्रीक दु खान्त नाटक और हार्डी की कृतिया, केवल इन दो उदाहरणो का ही हम यहां उल्लेख करेंगे। फिर भी यह सम्भव है कि उपर्युक्त आपत्ति यदि वास्तव में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को पेश करती, तो सही होती। कम से कम इतना तो है ही कि उपर्युक्त आपत्ति पश्चिमी जगत की महान कला की मानववादी परम्परा से अनुप्राणित है, और इसलिए श्रद्धा के योग्य है। हालांकि वह एक भारी गलतफहमी पर आधारित है।

कारण कि मार्क्सवाद व्यक्ति से इन्कार नहीं करता। वह जनसमुदाय को आर्थिक ताकतों के दुर्निवार चगुल में फसे रूप में ही नही देखता। यह

सच है कि कुछ मार्क्सवादी साहित्यिक कृतियों ने — विशेषकर कुछ "सर्वहारा" उपन्यासों ने—भोले आलोचकों को यह विश्वास करने का अवसर दिया कि ऐसा ही होता है, किन्तु इसमें कमजोरी शायद उन उपन्यासकारों की है जो अपने विषय की महानता के अनुरूप ऊंचे नहीं उठ सके, वे इतने योग्य सिद्ध नहीं हुए कि प्रकृति को बदलने तथा नयी आर्थिक शक्तियों की रचना करने की प्रक्रिया के दौरान में स्वयं अपनी कायापलट करने वाले मानव का चित्रण कर सकें। मार्क्सवाद मानव को अपने दर्शन का केन्द्र मानता है, कारण कि जहां वह यह दावा करता है कि भौतिक शक्तियां आदमी को बदल सकती हैं, वहां पर यह भी अत्यन्त स्पष्टता से घोषित करता है कि यह मानव ही है जो भौतिक शक्तियों को बदलता और ऐसा करने के दौरान में अपनी भी कायापलट करता है।

मानव और उसका विकास मार्क्सवादी दर्शन का केन्द्रबिन्दु है। मानव किस प्रकार बदलता है? बाह्य जगत से उसके क्या सम्बन्ध हैं? यही वे प्रश्न हैं जिनके उत्तर मार्क्सवाद के संस्थापकों ने खोजे और ढूंढ निकाले। मार्क्सवादी दर्शन की रूप-रेखा देना यहां मेरा अभीष्ट नहीं है। किन्तु आइए, इतिहास के एक सक्रिय साधन के रूप में मानव के प्रश्न की, काम करते और जीवन मे संघर्ष करते मानव के प्रश्न की, हम कुछ देर के लिए जरा परीक्षा करें, कारण कि यह एक ऐसा मानव है जो एकबारगी कला का सृजनकर्ता भी है और कला का पात्र भी। इतिहास में व्यक्ति की भूमिका के बारे में एंगेल्स की व्याख्या इस प्रकार है

"इतिहास इस तरह से अपना निर्माण करता है कि अन्तिम परिणाम हमेशा अनेक व्यक्तिगत इच्छा शक्तियों के द्वन्द्व से पैदा होता है और इन इच्छा-शक्तियों में से भी प्रत्येक, जीवन की अनगिनत विशेष परिस्थितियों के द्वारा, निर्मित होती है। इस प्रकार परस्पर काट करती अनगिनत ताकतें, शक्तियों की समानान्तर चतुर्भुजों की अनन्त शृंखलाएं, एक परिणाम को, ऐतिहासिक घटना को, जन्म देती हैं। इसे भी एक ऐसी शक्ति की उपज के रूप में देखना चाहिए जो अपने समग्र रूप में *निश्चेतन* तथा संकल्पहीन काम करती है। कारण कि प्रत्येक व्यक्ति जो संकल्प या इच्छा करता है उसमें अन्य सब बाधक होते हैं, और परिणाम-

स्वरूप जो कुछ प्रकट होता है वह ऐसा होता है जिसकी किसी ने भी इच्छा नही की थी। इस तरह अतीत का इतिहास एक प्राकृतिक प्रक्रिया की भाति चलता है और तत्वत गति के समान नियमो से शासित होता है। किन्तु इस तथ्य से कि व्यक्तिगत इच्छा शक्तिया — जिनमें से प्रत्येक वही चाहती है जिसके लिए कि उसका अपना भौतिक गठन तथा वाह्य परिस्थितिया, और अन्तिम रूप से आर्थिक परिस्थितिया (उसकी अपनी निजी परिस्थितिया अथवा आमतौर से समाज की परिस्थितिया) वाध्य करती हैं — अपनी इच्छित वस्तु को नही प्राप्त कर पाती, वल्कि एक सामूहिक मध्यमान में, एक सामूहिक परिणाम में, विलय हो जाती हैं, कभी यह नतीजा नही निकालना चाहिए कि उनका मूल्य शून्य के बराबर है। इसके प्रतिकूल उनमें से प्रत्येक परिणाम में योगदान देती है, और उसी मात्रा में वह उसमें निहित है।"[1]

यह सूत्र केवल इतिहासज्ञ के काम का ही नही है, वल्कि उपन्यासकार के काम का भी है। कारण कि उपन्यासकार इस बात से — जीवन के युद्धक्षेत्र में अन्य इच्छा-शक्तियो के साथ व्यक्तिगत इच्छा-शक्ति के द्वन्द्व के मसले से — अलग नही रह सकता, या उसे अलग नही रहना चाहिए। यह मानव का भाग्य है कि उसकी इच्छाए कभी पूरी नही होती, किन्तु यही उसका गौरव भी है, कारण कि उनकी पूर्ति के लिए किए गए अपने प्रयासो के दौरान में वह स्वय जीवन को बदलता है, चाहे वह ऐसा कितनी ही सीमित मात्रा में क्यो न करे। मानव के भाग्य के बारे में मार्क्सवादी सूत्र 'क = ०' नही है बलिक "इसके प्रतिकूल प्रत्येक परिणाम में योगदान देता है और उसी मात्रा में वह उसमें निहित है।"

लेकिन इच्छाओ, आशा-आकाक्षाओं तथा आवेशो-आवेगो का यह द्वन्द्व हवाई मानवो का द्वन्द्व नही है। कारण कि ऐंगेल्स इस बात पर बल देना नही भूलें हैं कि मानव की आकाक्षाओ और क्रियाकलापो को उसकी भौतिक गठन, और अन्तत आर्थिक परिस्थितिया — उसकी निजी परिस्थितिया अथवा आमतौर से समाज की परिस्थितिया — निर्धारित करती हैं। उसके सामाजिक इतिहास मे, यहा फिर अन्तिम तौर से, वह वर्ग जिसका कि वह एक अग है, तथा अन्तरविरोधो और द्वद्वो सहित

उस वर्ग की मनोवैज्ञानिक स्थिति ही, निर्णयात्मक भूमिका अदा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मानव का एक दोहरा इतिहास होता है, कारण कि वह एकबारगी एक ऐसा प्रतिनिधि भी है, जिसका एक सामाजिक इतिहास है, तथा एक व्यक्ति भी जिसका व्यक्तिगत इतिहास भी है। ये दोनो भी, चाहे उनमें कितना ही प्रत्यक्ष द्वन्द्व क्यों न दिखाई दे, एक इकाई हैं, क्योकि सामाजिक इतिहास अन्ततः व्यक्तिगत इतिहास को प्रभावित करता है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कला के क्षेत्र में भी सामाजिक स्वरूप को व्यक्तिगत चरित्र पर हावी होना होगा। फालस्टाफ, डौन क्विक्जोट, टौम जोन्स, जूलियन सौरेल, मौशिये द चार्लस[1] —ये सब प्रतिनिधि चरित्र हैं। किन्तु ये ऐसे चरित्र हैं जिनकी सामाजिक विशिष्टताए व्यक्ति को उभार कर रखती हैं, तथा जिनकी व्यक्तिगत आशा-आकाक्षाए, भूख और प्यास, प्रेम, ईर्ष्या और लालसाएं सामाजिक पृष्ठभूमि को आलोकित करती हैं।

उपन्यासकार व्यक्ति के भाग्य की कहानी उस समय तक नही लिख सकता जब तक कि वह सम्पूर्ण वास्तविकता के इस सुस्पष्ट सुस्थिर दर्शन से भी लैस न हो। उसमें यह समझ होनी चाहिए कि उसके पात्रों के व्यक्तिगत द्वन्द्वों से किस प्रकार उसका अन्तिम निष्कर्ष प्रकट होता है, साथ ही उसे यह भी समझना चाहिए कि जीवन की वे विविध परिस्थितिया कौनसी हैं जिनकी बदौलत उन व्यक्तियों में से प्रत्येक वैसा बना है जैसा कि वह है। "परिणामस्वरूप जो कुछ प्रकट होना है वह ऐसा है जिसकी किसी ने भी इच्छा नही की थी।"—इस वाक्य में कितने सही रूप में हर महान कलाकृति का सारतत्व निहित है, और खुद जीवन की तरतीब को भी, यह कितनी अच्छी तरह से व्यक्त करता है. कारण कि उस घटना के पीछे जिसकी किसी ने इच्छा नही की थी, एक तरतीब होती है। रचनात्मक कलाकार के लिए मार्क्सवाद वास्तविकता को समझने की एक कुजी है। यह उसे जीवन की तरतीब को देखने में मदद देती है और यह बताती है कि उस में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति क्या है। यह सचेत रूप में मानव को पूर्ण महत्व प्रदान करती है, और इस अर्थ में यह अन्य सभी विश्व-दर्शनों में अधिक मानवतावादी दर्शन है।

तीन

सत्य और वास्तविकता

"मैं एक ऐसा आदमी हू जिसके लिए प्रत्यक्ष जगत का अस्तित्व है,"—कलाकार के रूप में अपना सारतत्व बताते समय थियोफिल गौतिये[1] ने गौन्कोर्ट बन्धुओ से कहा था। इसके बजाय अगर वह यह कहते कि "मैं एक ऐसा आदमी हू जिसके लिए जगत का अस्तित्व है," तो लेखक के रूप में अपने निजी गुणो तथा सीमाओ को कदापि वे इतनी अच्छी तरह प्रकट न कर पाते, किन्तु इससे लेखक और वास्तविकता के बीच के सम्बध को जाचने का, सत्य के प्रति उसके रवैये को जाचने का, एक बहुत ही अच्छा अवसर हमें अवश्य मिल जाता।

ऐसा लगता है मानो आधुनिक समाज में श्रम के उत्तरोत्तर बढते हुए विभाजन तथा उसके किसी क्षेत्र-विशेष में अधिकाधिक विशेषज्ञता प्राप्त करने की प्रवृति ने लेखक की आवाज का गला घोट दिया है, उसे इतना अधा बना दिया है कि वह वास्तविक जगत को समग्र रूप में नही देख पाता। "लिखना मेरा धधा है," यह इसकी सकीर्णतम अभिव्यक्ति है, मानो इस धधे में अन्य धधो की कोई जानकारी रखने की आवश्यकता नहीं। मि बाल्डविन[2] हमें भरोसा दिलाते हैं कि कविता एक निर्दोष धधा है, किन्तु उसी समय तक, जब तक कि कवि जीवन के उस समूचे भाग से आखें मूद लेता है जो कि उसकी कृति के "निर्दोष" स्वरूप पर असर डाल सकता है। कलाकार के दायित्व का यह सकीर्ण दृष्टिकोण बहुत ही आधुनिक है। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य काल से पहले तक विश्व के अधिकाश लेखक इसे तनिक भी मान्यता नही

देते। मार्लो से लेकर फील्डिग तक अंग्रेजी साहित्य के वीरतापूर्ण काल में यह सर्वथा अज्ञात था।

आज साहित्य का क्रान्तिकारी कार्य यह है वह अपनी महान परम्परा को पुनर्स्थापित करे, मनोवाद और संकीर्ण विशेषज्ञता हासिल करने की प्रवृत्ति की वेडियो को तोड फेंके, रचनात्मक कलाकार को उसके एक-मात्र महत्वपूर्ण कार्य से—सत्य का, वास्तविकता का, ज्ञान अर्जित करने के कार्य से—साक्षात्कार कराए। कला एक साधन है जिसके द्वारा मानव वास्तविकता से जूझना और उसे आत्मसात करता है। अपनी भीतरी चेतना की निहाई पर लेखक वास्तविकता-रूपी लाल-भभूका धातु को रखता, हथौड़ियों की चोट से ठोक-पीटकर अपने उद्देश्य के अनु-कूल उसे नयी शक्ल में ढालता और एकदम वेसुध होकर—नाओमी मिचीसन[1] के शब्दो में—विचारो के हिंस्र हथौडे उस पर बरसाता है। सृजन की समूची प्रक्रिया, कलाकार की सम्पूर्ण वेदना, वास्तविकता के साथ इसी हिंस्र द्वन्द्व में, और दुनिया का एक सत्यपूर्ण चित्र गढ़ने के इस प्रयास में, निहित है।

"ज्ञान अपार पहुचा देता देवताओं के समकक्ष मुझे
वड़े-बड़े नाम, करतब, पुरानी कथाएं, भयंकर घटनाएं और विद्रोह
राजामहाराजा, कोकिल कण्ठ और आह-कराहें
सृजन और विनाश, सब एक साथ—
भर जाते मेरे दिमाग के व्यापक शून्य कोटरों मे
जागता फिर देवत्व, मानो किसी छलछलाती मदिरा का
अथवा कर पान उजली अनुपम सजीवनी सुरा का
बन जाता अमर मैं।"[2]

कीट्स ने, जिन्हें उनके काल के प्रतिक्रियावादी आलोचको ने अपनी घृणा का शिकार बनाया और चैन से न बैठने दिया — बाइरन और शैली पर भी, जो प्रत्यक्षत अधिक क्रान्तिकारी मालूम होते थे, उनकी घृणा का कुत्सित सैलाब इतनी भयकरता से नहीं टूटा था—अपनी सबसे महान कविता में जो पूरी न हो सकी, हर महान रचना-

त्मक कलाकार के क्रान्तिकारी सघर्ष के मूल तत्व को पेश करने की चेष्टा की है। कारण कि जो सचमुच महान लेखक है,—उसके राजनीतिक विचार चाहे कुछ भी क्यो न हो—वह वास्तविकता के साथ भयानक तथा क्रान्तिकारी युद्ध में जूझे विना कभी रह नही सकता। हां, क्रान्तिकारी युद्ध में, क्योकि वह वास्तविकता को वदलना चाहता है। उसके लिए जीवन एक युद्ध क्षेत्र के समान है, जहा हमेशा स्वर्ग और नरक के वीच, सिहासनच्युत और सिहासनारूढ देवताओं के वीच, मानव की आत्मा के लिए सघर्ष चलता रहता है।

क्या मार्क्सवाद इस युद्ध के लिए लेखक को सज्जित कर सकता है ? हाल ही में *टाइम्स* समाचार पत्र के साहित्यिक सप्लीमेण्ट में प्रकाशित एक अग्रलेख में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया था। अमरीका के क्रान्तिकारी साहित्य का उल्लेख करते हुए *टाइम्स* के आलोचक ने सवाल उठाया था कि क्या यह नया साहित्य "मानव अनुभव के समूचे विस्तार को आत्मसात करने और उसे सभालने की क्षमता रखता है ? निश्चय ही उस समय तक कभी नही जव तक कि कठमुल्लाओ की तूती वोलती रहती है। मूल कला का लक्ष्य, और किसी-न-किसी मात्रा में एक सिरे से,सभी कलाओं का लक्ष्य, एक ऐसी समझ पैदा करना है जो सभी रूपो और मतो को हृदयगम कर सके। फलत उसकी प्रकृति ही ऐसी है कि उदार-से-उदार समाज-दर्शन की सीमाओ में भी वह वध कर नही रह सकती, मार्क्सवाद तो और भी दूर की चीज़ है, जो व्यवहार में आमतौर से काफी कट्टरता का परिचय देता है। कला और कठमुल्लापन में जमीन-आसमान का अन्तर है यों कोई कारण नहीं कि एक कलाकार मार्क्सवादी होने के साथ-साथ एक ईमानदार कलाकार भी न वन सके, किन्तु यह तभी हो सकता है जव कि उसके मार्क्सवाद का रूप उसके गहनतम ज्ञान से न टकराये। हर आदमी को अपने अज्ञान के कारण बरबस ठोकरें खानी पडती हैं, आखें रहते भी उसे अधा वनना पडता है। अधिक से अधिक वह यही कर सकता है कि नयी दृष्टि पाने के लिए निरतर सघर्ष करता रहे। इसके लिए किसी एक रूप का—चाहे वह केवल मानसिक ढाचे की शक्ल में ही क्यो न

हो—होना अनिवार्य है, और तटस्थ दृष्टि से देखने पर कोई कारण नही कि इस गौण भूमिका में—जब तक कि उसे गौण रखा जाता है—मार्क्सवाद भी क्यो न उतना ही सन्तोषप्रद काम करे जितना कि उसकी अन्य जोडीदार विचारधाराए करती हैं।"

मार्क्सवाद के प्रति *टाइम्स* के इस आलोचक का रवैया सहानुभूति-पूर्ण तो है, किन्तु वह उसके वास्तविक महत्व को नही पकड सका। प्रश्न यह नहो है कि मार्क्सवाद—अगर लेखक का कोई एक 'धर्म' होना ही चाहिए तो—ब्रह्मवाद, या फ्रायडवाद, अथवा अन्य किसी वाद जितना उपयुक्त हो सकता है या नहीं। उसके अनुसार रूप एक मानसिक मशी-नरी है और मार्क्सवाद इस गौण भूमिका को अच्छी तरह निवाह सकता है। उसके इस तर्क से मुझे अपने स्कूल के हेडमास्टर की याद आ जाती है जो प्रत्येक वार्षिक-दिवस पर, क्लासिक्स की पढाई को यह कह कर उचित ठहराता था (हमारे व्यापारिक समुदाय में इसका भी औचित्य सिद्ध करना आवश्यक है) कि 'मानसिक व्यायाम' के रूप में वह बेजोड है। और जिस प्रकार हमें क्लासिक्स का अध्ययन कराया जाता था, उस रूप में निश्चय ही वह मानसिक व्यायाम ही था—यह बात दूसरी है कि वह बेजोड भी था या नही। किन्तु यह एक सदेहजनक बात है कि एरासमस[1] क्लासिक्स की शिक्षा की उपयोगिता की इस धारणा को पसन्द करते।

जो भी हो, तत्व की बात यह है कि एरासमस एक ऐसे जमाने में रहते थे जब कि क्लासिक्स का ज्ञान जीवन के सत्य के लिए रचनात्मक कलाकार के सघर्ष का एक आवश्यक अस्त्र था। मध्य-कालीन रूढ़ाधता और दकियानूसीपन पर विजय पाने के लिए ग्रीस और रोम के काव्य तथा चिन्तन की आवश्यकता थी। मानसिक व्यायाम का नहीं, बल्कि मानव की आत्मा पर काबू पाने का मसला दरपेश था। यह बात हमारे समय में मार्क्सवाद के लिए भी सच है। यह हमारे जमाने में मानव प्रगति का दर्शन तथा ऐसा एकमात्र विश्व दृष्टिकोण है जो घिसी-पिटी रूढियों तथा दकियानूसीपन के विरुद्ध, जो हमारे आधुनिक युग में भी मानव की आत्मा को जकडे हुए हैं, हमें सफलता से सघर्ष करने

चार

उपन्यास और वास्तविकता

उपन्यास और महाकाव्य के बीच अक्सर तुलना की जाती है। उपन्यास हमारे आधुनिक, बुर्जुआ, समाज का महाकाव्य है। कला के इस रूप ने अपना पूर्णतम विकास इस समाज की यौवनावस्था में प्राप्त किया, और ऐसा लगता है कि हमारे समय में बुर्जुआ समाज के ह्रास ने उसे भी ग्रस लिया है। फील्डिंग ने अपने "वीरतापूर्ण ऐतिहासिक, गद्यमय काव्य" *टौम जोन्स* के प्राक्कथन में आधुनिक उपन्यास के महाकाव्यगत उद्भव और भूमिका की घोषणा की थी, किन्तु कोई भी आलोचक इतनी कुरुचि का परिचय नहीं देगा कि समसामयिक उपन्यासों की भारी बहुसंख्या को वह महाकाव्यगत गुणों से युक्त कहे, हालांकि उपन्यासों की इस बाढ़ में भी '*युलिसेस*' और '*स्वान्स वे*' में शायद हम अपने '*हेनरियाद*' अथवा अपने '*इडिल्स आफ दी किंग*' की झलक पा सकते हैं।[1]

हम यहा तक कह सकते हैं कि उपन्यास बुर्जुआ साहित्य की न केवल सबसे प्रतिनिधि उपज है, बल्कि उसकी श्रेष्ठतम रचना भी है। यह कला का एक नया रूप है। आधुनिक सभ्यता—जिसका प्रारम्भ रेनैसां काल से होता है—से पहले इसका अस्तित्व नहीं था, अगर था भी तो अत्यंत प्राथमिक रूप में था। और हर नये कला-रूप की भांति मानवीय चेतना का विस्तार करने तथा उसे गहरा बनाने का अपना उद्देश्य यह भी पूरा कर चुका है। तो क्या हमारी सभ्यता के अन्त के साथ यह भी खत्म हो जाएगा, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राचीन समाज के साथ महाकाव्य

का अन्त हो गया था ? किन्तु महाकाव्य ने *शांशों दा ज़ेस्ट* में फिर जन्म लिया, और जब वह उस समाज के साथ *विलीन* हो गया जिसने कि उसे जन्म दिया था तो उपन्यास ने पदार्पण किया। अनुप्राणित तो इसे भी महाकाव्य ने ही किया था, किन्तु इसका लक्ष्य था नये मानव की आवश्यकताओं को पूरा करना, उसकी आशा आकाक्षाओं को व्यक्त करना तथा उसकी तूफानी दुनिया को चित्रित करना। लगता है मानो हमारी कलात्मक अभिरूचि की पूर्ति महाकाव्य के रूप में ही हो सकती है। किन्तु क्या नया सिनेमा, जो ध्वनि और रग से लैस है तथा सगीत का उपयोग करने की क्षमता से युक्त है (यह अपने एक निजी सगीत का निर्माण भी कर चुका है, जो आधुनिक टैकनीक की देन है तथा ठेठ सगीत से गुणनात्मक रूप से भिन्न है), क्या यह नई, प्राणवान कला युग के महाकाव्य की रचना नहीं कर सकती ?

इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि एक काफी बडी हद तक सिनेमा ऐसा करने में सफल हो सकता है, किन्तु मेरी समझ में वह पूर्णतया ऐसा नहीं कर सकता। कारण कि उपन्यास का पलडा इस मानी में सदा भारी रहेगा कि वह मानव को कही अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुन कर सकता है, तथा उस महत्वपूर्ण आन्तरिक जीवन की झाकी दिखा सकता है जो कि मानव के निरे नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न होती है और जो सिनेमा की क्षमता से बाहर की चीज है। यह अवश्य हो सकता है कि सिनेमा की चुनौती उपन्यास को फिर अपना सिर ऊचा उठाने तथा अपने सोए हुए महत्वपूर्ण गुणो को फिर पाने के लिए बाध्य करे,—सबसे बढ़कर यह अनुभव करने के लिए बाध्य करे कि क्रियाशीलता की कितनी आवश्यकता है। जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता का रहस्य केवल इसी बात में नहीं है कि लोग अपराध या हिंसा से प्रेम करते हैं। असल में जासूसी उपन्याम साहित्य में क्रियाशीलता की, नाटकीय तत्व की, उस वास्तविक माग को पूरा करते हैं जिसे सिनेमा का पोषण मिला है, और आधुनिक उपन्यास जिससे कतराता है।

महाकाव्य द्वारा ममाज की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, वैसी उपन्यास द्वारा न तो कभी हुई और न हो ही सकती है। महाकाव्य

और धैर्यमयी पेनिलोप[1] और बुद्धिमान तेलेमाकस[2] द्वारा स्वागत में, इसका अन्त नही होता। इसका अन्त होता है साइबेरिया के लिए उसकी अन्तिम यात्रा और फिर एल्ब-तट पर उसकी वापसी में।

"यहा मेरे साझीदार को और मुझे अपने माल के लिए बहुत अच्छा बाजार मिला। चीन का माल भी खूब बिका। और साइबेरिया की रोएदार खालें आदि भी, और माल का बटवारा करने पर मेरे हिस्से में तीन हजार चार सौ पिछत्तर पौण्ड सात शिलिंग और तीन पेन्स आए। इसमें करीब छै सौ पौण्ड मूल्य के वे हीरे भी शामिल हैं जिन्हें मैंने बगाल में खरीदा था।" रौबिन्सन का जीवन, ओडिसियस के जीवन की भाति, एक विचित्र यात्रा का वृतान्त है, और ओडिसियस की भाति ही "अवकाशप्राप्ति तथा शान्ति के साथ शेष दिन बिताने के वरदान" के रूप में इसका अन्त होता है। किन्तु ओडिसियस का सम्पूर्ण लक्ष्य ट्राय में युद्ध से अपने द्वीप की ओर—अपने घर की ओर—लौटना है, जब कि रौबिन्सन की यात्रा का सम्पूर्ण महत्व उसकी वापसी में नही, बल्कि उसके घर से प्रस्थान में निहित है। वह साम्राज्य-निर्माता है, एक ऐसा आदमी है जो प्रकृति को ललकारता और उस पर विजय प्राप्त करता है। अपने पुरस्कार का, एक-एक पाई का वह हिसाब रखता है, और यह कमाई भी जायज कमाई है।

अठारहवी शताब्दी के समूचे दौरान में रौबिन्सन क्रूसो ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन में एक आधार का काम दिया। इतना ही नही। उसकी ध्वनि अब भी जौन स्टुअर्ट मिल की रचनाओ में सुनी जा सकती है। नये पूजीपति वर्ग को उसका गायक मिल गया, एक ऐसा गायक जो काहिल नही था, और न उसकी गाथा ही कोई थोथी गाथा थी। मानव के जीवन में वह एक नये युग के प्रवेशद्वार पर खडा था, जब कि दो शताब्दियो के दौरान में दुनिया को अपनी सबसे मुकम्मिल कायापलट में से होकर गुजरना था और इन्सान खुद प्राचीन कवियो के सपनों को—हवा में उडने, सात-मील लम्बे डगो से धरती को नापने, समुद्र की सतह और उसकी गहराइयों पर काबू पाने के सपनो को, पूरा करने वाला था। इन सपनो को पूरा करने के दौरान में मानव ने स्वय अपनी

भी कायापलट की और महान सस्कृतियों को नष्ट किया, मानव और मानव के सम्बधो को भ्रष्ट किया, बौद्धिक जीवन को कोयले या बूट-पालिश के व्यापार से भी नीचा दर्जा दिया, और मानवीय जीवन के असली चरित्र को ढोग के इतने मोटे नकाब से ढक दिया कि जिसकी मिसाल मानवीय सम्बधों के इतिहास में पहले कभी ढूढे नही मिलेगी।

पूजीवादी समाज के विकास ने कलाकार की स्थिति को उस स्थिति से सर्वथा भिन्न बना दिया जो कि उसे पहले की सभी समाज-व्यवस्थाओ में प्राप्त थी। अपने प्रारम्भिक काल में, रेनैसा से लेकर अठारहवी शताब्दी के मध्यकाल तक, यह बात इतनी प्रत्यक्ष नही थी। लेखक को तब तक मानव को उसके असली रूप में देखने की स्वतत्रता थी, वह उसका सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता था और वर्तमान तथा मध्यकालीन अतीत की आलोचना करने की भी उसे छूट थी। सक्षेप में यह कि जिस पूजीवाद ने एक पद्धति के रूप में यथार्थवाद को जन्म दिया और उपन्यास की शक्ल में उसे एक पूर्णरूप दिया, मानव को कला का जिसने केन्द्र बनाया, उसी पूजीवाद ने अन्त में उन परिस्थितियो को नष्ट भी कर दिया जिनमें कि यथार्थवाद पनप सकता था और मानव के लिए अब कला के क्षेत्र में, *खासतौर से उपन्यास के क्षेत्र में, केवल पगु या विकृत रूप में ही प्रवेश* करने की गुजाइश छोडी। १८५७ में फ्लौवर्ट पर अश्लीलता के मुकदमे का उल्लेख करते हुए थियोफिल गौतिये ने इस परिस्थिति का सारतत्व इन शब्दों में रख दिया था "सचमुच, अपने इस धघे पर मुझे लज्जा आती है। उन बहुत ही मामूली रकमो के बदले में जो कि मैं कमाता हूँ—अगर ऐसा न करू तो भूखो मरना पड जाय—मैं जो कुछ सोचता हू उसका केवल आधा या चौथा भाग ही कह पाता हूं इस पर भी हर वाक्य पर यह सासत जान को लगी रहती है कि कही अदालत के सामने न घिसटना पडे।" *जोनाथन वाइल्ड* से लेकर फ्लौवर्ट के मुकदमे और गौतिये की कटु टिप्पणी तक ले-देकर केवल एक शताब्दी से कुछ साल अधिक बीते होंगे, किन्तु इस अवधि में ही क्या-से-क्या हो गया!

पूजीवाद के विकास, खास तौर से श्रम के बारीक-से-बारीक विभाजन और मशीन-उद्योग की स्थापना के बाद मानव द्वारा मानव के बढ़ते हुए

तो वह उसे तेल या साबुन की एक मिकदार के बराबर, और शेक्सपीयर के नाटक को खाद की एक विशेष मात्रा के बराबर बना देता है—यदि वह नाटक इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज के किसी भागीदार के दान से वेस्ट एण्ड में दिखाया जा रहा हो। उन्नीसवी शताब्दी का उपन्यासकार नये बुर्जुआ वर्ग के प्रति बनैली घृणा के साथ इस सीधे समरूपीकरण का विरोध करता था। किन्तु इस घृणा ने उसकी दृष्टि को सीमित कर दिया और वह नये समाज के कुछ सकारात्मक पहलुओ को न देख सका।

आधुनिक लखपति और उस वर्ग मे उसकी छवि जिसका कि वह सिरमौर है, केवल विज्ञान के विकास की बदौलत ही सम्भव हो सके हैं। विज्ञान उसके लिए लाभदायक है, फलत अपनी ओर से वह उसके विकास में मदद देता है। विज्ञान के इस विकास में, तथा नयी दुनिया के अन्वेषकों के सेवार्पित जीवन में—फैराडे, पास्चर और क्यूरी मे—हमारे युग की वास्तविक कविता निहित है तथा हमारे समय के सच्चे वीर मिलते हैं। किन्तु उन्नीसवी शताब्दी का उपन्यासकार—बुर्जुआ दुनिया से, जिसमें कि वह रहता था, झकझोडा हुआ, १८४८ में फ्रान्स की क्रान्ति के महान सपनो के अन्तिम रूप से चूर-चूर हो जाने के फलस्वरूप निराश और मजदूर-वर्ग के उदय से भयभीत—यह नही देख पाता। लेखको के इस रवैये के एक प्रतिनिधि उदाहरण के रूप में गोन्कोर्ट बधुओ का उल्लेख किया जा सकता है। १८५७ की अपनी डायरी में उन्होंने लिखा था

"धोखाधडी में विज्ञान के क्षेत्र तक में इस शताब्दी को कोई मात नही कर सकता। वर्षों से रसायन और भौतिक विज्ञान के बिलबौके[1] हर सुबह, नये चमत्कार, तत्व या नयी धातु का वादा करते हैं, गम्भीरता के साथ पानी में ताम्बे की प्लेटो से हमे गरमाने, हमारी भूख का प्रबध करने या किसी चीज से हमारी जान लेने और हम सब को शतायु बनाने आदि का बीडा उठाते हैं। यह सब एक जबरदस्त धोखा है जिसका उद्देश्य है इन्स्टीन्यूट[2] में गद्दी-नशीन होना, पुरस्कार, पदक और पेन्शनें पाना तथा सम्मान एव ख्याति हासिल करना। और एक तरफ जहां यह सब कुछ हो रहा है, वहा महगाई दुगनी, तिगुनी, दस गुनी

बढ़ती जा रही है—पोषण की सामग्रियाँ या तो मिलती नहीं और यदि मिलती भी हैं तो रद्दी क़िस्म की, यहा तक कि युद्ध में मृत्यु भी प्रगति करती नज़र नहीं आती (सेबास्तोपोल में यह बात स्पष्ट हो गयी थी), और जिसे हम अच्छा सौदा समझते हैं वह हमेशा हद दर्जे का बुरा सौदा सिद्ध होता है।"

अस्तु, तब से अब तक वैज्ञानिको ने यह सिद्ध कर दिया है कि मौत की दिशा में वे भारी प्रगति कर सकते हैं, और आजकल वैज्ञानिकों के काम का यह नकारात्मक पहलू ही उपन्यासकार को प्रभावित करता है। किन्तु विज्ञान को जीवन की कायापलट करने वाली एक शक्ति के रूप में, वैज्ञानिक के जीवन और काम के बीच भारी अन्तरविरोध को, तथा पूजीवादी समाज द्वारा उनके उपयोग को आज का उपन्यासकार नही देखता। अपनी कला की सामग्री के रूप में वह इनकी लगभग उतनी ही अवहेलना करता है जितनी कि गौन्कोर्ट बन्धु करते थे।

उन्नीसवी शताब्दी के समूचे दौरान में हम यह देखते हैं कि कलाकार उस दुनिया को अस्वीकार करने की व्यर्थ चेष्टा में लगा है जो उस पर ऐसे मानदण्ड लादती है जिन्हें वह कभी स्वीकार नही कर सकता। सो इस दुनिया से बचने के लिए कुछ तो अपने काल्पनिक गढ़ में जा बसते हैं और उसके ऊपर 'कला कला के लिए' की रेशमी पताका फहरा देते हैं। यह विचित्र नारा, अगर सच पूछा जाय तो उस सभ्यता को चुनौती देता है जो चादी के कुछ सिक्को के अलावा कला का और कोई मूल्य नहीं मानती। 'कला कला के लिए' का नारा, कला धन के लिए के नारे का एक बहुत ही निकृष्ट उत्तर है,—निकृष्ट इसलिए कि कल्पना किलेबन्दी के लिए कभी कारगर सामग्री सिद्ध नही हुई है।

गेरार्ड द नेरवाल[1] की भाति कुछ आत्म-हत्या करने पर मजबूर होते हैं। अन्य हताश होकर, अपने ही कृतित्व से इन्कार करना शुरू कर देते हैं। रिम्बो,[2] जो कि पेरिस कम्यून का एक युवक कवि था, जो बुर्जुआ वर्ग से घृणा करता था और जिसने कविता में अनेक क्रान्तिकारी प्रयोग किए थे, अबीसीनिया में जाकर अपने-आपको जिन्दा दफना देता है और पाशविक सनक के साथ हथियारो और मानव-

शरीरों तथा अफ्रीका की उन सभी चीजो में व्यापार करने लगता है जिन पर उस समय बुर्जुआ वर्ग की लोलुप निगाहें विशेष रूप से जमी थी। गोगा[1] ताहिती में पोलीनीशियाई 'आदिवासियो के बीच जा बसता है और अपनी घासफूस की झोंपडी को उत्कृष्ट कलाकृतियो से सजाता है, सीज़ा[2] अपने चित्रों को खन्दक में फेंक देता है, और वान गो[3] के आखीरी दिन एक पागलखाने में कटते हैं।

किन्तु ठीक इसी काल में उनका मित्र और हिमायती एमील जोला, अस्पष्ट किन्तु सच्चे मायनो में प्रतिभावान, अंधेरे में टटोलता हुआ प्रकाश की ओर अग्रसर होता है। और ज्यो-ज्यो वह मजदूर वर्ग के कठोर और कटु किन्तु उमग भरे जीवन के निकट पहुचता है, उसे अपने अन्दर एक नयी ज्वाला का आभास होता है। जोला सफल नही हो पाता, अपने पूर्वजो के गलत सिद्धान्तो के बोझ से दबा हुआ वह उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर, यथातथ्यवाद के घातक तथा यान्त्रिक सिद्धान्त की रचना करता है। किन्तु उसकी यह असफलता भी एक शानदार असफलता है जिससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

कुजी भी वही, पास में ही, मौजूद थी। मार्क्स और ऐंगेल्स यह दिखा चुके थे कि किस प्रकार पूजीवाद उन परिस्थितियो को नष्ट करने के साथ-साथ, जिनमें कि महान कला पनप सकती है, ऐसी परिस्थितियों की भी रचना करता है जिनमें कला और भी अधिक ऊची उठ सकती है,—इतनी ऊची कि जिसका मानव इतिहास में कोई दृष्टात नही मिलता। किन्तु पूजीवाद अपने-आप में इन परिस्थितियो का उपयोग नही कर सकता, इस नयी कला को जन्म नही दे सकता। इसने तो इतिहास में पहली बार, विश्व कला के लिए, एक विश्व साहित्य के लिए, उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण भर किया है। इसने समूचे विश्व को अपने साचे में ढाल लिया है, टेकनीक और उत्पादन का इतना विकास किया है कि "पिछडी" हुई और "उन्नत" जातियो के भेद के बने रहने का अब कोई कारण नही रह गया है। *कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र* के शब्दो में

"उत्पादन प्रणाली में निरंतर क्रान्तिकारी परिवर्तन, सामाजिक परिस्थितियो में अनवरत उथल-पुथल, स्थाई अनिश्चितता और हलचल—बुर्जुआ युग की यही वे विशिष्टताए हैं, जो कि पहले के सभी युगो से उसे भिन्न बना देती हैं। प्राचीन तथा पूज्य कहलाने वाले अंधविश्वासों तथा मतो की शृंखला को लिए हुए तमाम स्थिर और जड सम्बंध खत्म कर दिये गये हैं। नये सम्बंधों को बने देर नही होती कि वे पुराने पड जाते हैं, उनके रूढ होने की नौबत ही नहीं आ पाती। जिन चीजो को ठोस समझा जाता था वे हवा में उड जाती है, जिन्हें पवित्र माना जाता था, वे भू-लुठित हो रही हैं, और मानव आखिरकार इस बात के लिए बाध्य हो गया है कि वह अपने जीवन की असली परिस्थितियो तथा दूसरो के साथ अपने सम्बंधो पर गम्भीरता के साथ विचार करे।

"अपने माल के लिए निरंतर बढ़ते हुए बाजार की जरूरत के कारण पूंजीपति वर्ग समूचे भूमण्डल की धूल छानता है। वह हर जगह घुसने की, हर जगह पैर जमाने की, और हर जगह सम्बंध स्थापित करने की कोशिश करता है।

"विश्व मण्डी के शोषण द्वारा पूंजीपति वर्ग ने उत्पादन और खपत को हर देश में एक सार्वभौम रूप दे दिया है। प्रतिक्रियावादी चीखते-चिल्लाते रहे, किन्तु उसने उद्योग के पांव के नीचे से उसकी वह राष्ट्रीय जमीन ही खिसका दी जिस पर कि वह खडा हुआ था। तमाम पुराने स्थापित राष्ट्रीय उद्योग तबाह हो गये या आये दिन तबाह हो रहे हैं। उनकी जगह नये उद्योग ले रहे हैं, जिनकी स्थापना करना सभी सभ्य राष्ट्रो के लिए जीवन-मरण का सवाल बन गया है। ये नये उद्योग अपने देश के कच्चे माल का उपयोग नही करते, बल्कि अपने लिए दूर-दूर के प्रदेशो से कच्चा माल मंगाते हैं। इन उद्योगों की तैयार की हुई चीजों की केवल घर में ही खपत नहीं होती, बल्कि विश्व के कोने-कोने में वे पहुंचती हैं। उन पुरानी आवश्यकताओ की जगह, जिन्हें स्वदेश की बनी हुई चीजो से ही पूरा किया जा सकता था, अब ऐसी नयी-नयी आवश्यकताओं ने ले ली है, जिनको पूरा करने के लिए दूर-दूर के देशो और

भू-भागों से माल मगाना पडता है। पुरानी स्थानीय तथा राष्ट्रीय पृथकता और आत्म-निर्भरता की जगह अब आदान-प्रदान के चौतरफा सम्बधो ने, राष्ट्रो के बीच सार्वभौमिक अन्तर-निर्भरता ने, ले ली है और भौतिक उत्पादन की ही तरह बौद्धिक उत्पादन में भी यही परिवर्तन हो गया है। व्यक्तिगत राष्ट्रों की बौद्धिक रचनाए सामूहिक सम्पत्ति बन गयी हैं। राष्ट्रीय एकांगीपन तथा सकीर्ण दृष्टिकोण अब अधिकाधिक असम्भव होते जा रहे हैं, और अनगिनत राष्ट्रीय तथा स्थानीय साहित्यो के बीच से एक विश्व-साहित्य का उदय हो रहा है।"[1]

किन्तु यह विश्व साहित्य एक पगु शिशु है। पूजीवादी उत्पादन की जिन परिस्थितियो ने इसे जन्म दिया था, वे ही इसके सहज विकास में बाधक हैं। जातीय और राष्ट्रीय विद्वेष, वर्ग शत्रुता, सबल राष्ट्रो द्वारा निर्बल राष्ट्रो के राष्ट्रीय विकास का बलपूर्वक रोका जाना, यहा तक कि यौन हठ और यौन शत्रुता, नगरो और देहातो के बीच विरोध, माल के सामूहिक उत्पादन के परिणामस्वरूप मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच दिन दिन चौडी होती हुई खाई—पूजीवादी समाज के अन्तर-विरोधो से उत्पन्न ये सब चीजें विश्व-साहित्य के विकास को अवरुद्ध करती हैं। इससे परिणाम यह निकलता है कि उपन्यासकार की कठिनाइयो का हल हमारे आधुनिक समाज की वास्तविकता को नजर में रख कर एक क्रान्तिकारी ढग से ही हो सकता है, और केवलमात्र ऐसे हल से ही उसकी कला फिर से महाकाव्य का रूप ग्रहण कर सकती है।

पांच

उपन्यास महाकाव्य के रूप में

इस निबंध की यह मुख्य मान्यता है कि उपन्यास विश्व की कल्पना-प्रसूत संस्कृति को बुर्जुवा अथवा पूजीवादी सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण देन है।[1] उपन्यास उसकी एक महान साहसपूर्ण खोज है,—मानव की उसके द्वारा खोज है। यहा आपत्ति उठाई जा सकती है कि सिनेमा भी तो पूजीवाद की देन है। यह बात सच है, किन्तु केवल टेकनिकल अर्थ में ही, कारण कि पूजीवाद अभी तक उसे एक कला के रूप में विकसित नही कर सका है। नाटक, सगीत, चित्रकारी और मूर्तिकला, इन सबको आधुनिक समाज ने विकसित किया है, चाहे अच्छी दिशा में किया हो या बुरी दिशा में। ये सभी कलाए विकास की एक लम्बी मजिल पार कर चुकी हैं, और लगभग उतनी ही पुरानी हैं जितनी कि खुद सभ्यता है, और उनकी मुख्य समस्याए भी हल हो चुकी हैं। किन्तु उपन्यास की केवल एक ही समस्या—सो भी सबसे सीधी, यह कि कहानी कैसे कही जाय—अतीत ने हल की है।

इसका यह अर्थ नहीं कि उपन्यासकारो ने एकदम न कुछ से अपनी इमारत खडी करनी शुरू की। उनके पास सचित अनुभव की एक पूजी मौजूद थी, ऐसे अनुभव की पूजी जिससे हम आज भी लाभ उठा सकते हैं। मध्य काल का अन्त होते-न-होते इग्लैण्ड तथा इटली के व्यापारी समुदायों ने आधुनिक पद्धति से कथा कहने वाले पहले किस्सागो पैदा किये। इन किस्सो में पुरुष तथा स्त्री पात्रो के चरित्रों को, और उनके काम करने के ढगो को, लगभग उतना ही महत्व दिया जाता था जितना

कि उनके कारनामो को। उपन्यासकार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता —पुरुषो और स्त्रियो को जानने की जिज्ञासा—सर्वप्रथम चौसर और बोकेशियो में प्रकट हुई। हो सकता है कि मेलोरी[1] में भी यह तत्व कुछ दिखाई दे, लेकिन वह चौसर से करीब एक शताब्दी बाद लिख रहा था, और हालाकि गद्य को ही उसने अपना माध्यम बनाया था, लेकिन लगता ऐसा है मानो वह कवि से बहुत ही पिछडा हुआ हो। यह सच है कि उसके लेखन-काल में समाज ह्रास की पूरी अराजकता में डूबा था, किन्तु अंग्रेजी पुरुषो और स्त्रियो का कही अधिक सच्चा चित्र (और कही-कही अच्छा गद्य भी) मेलोरी के मुकाबले में आपको पेस्टन के पत्रो[2] में मिलेगा।

मेलोरी के शूरवीरो और रमणियो में, उनकी गोलमेज और उनके रहस्यवादी सन्त ग्राएल[3] में, उनकी हत्याओ और उनके छरछन्दो में, पूजीवादी साहित्य के उस अत्यन्त विनाशकारी रूप के—रोमाण्टिसिज्म के —सभी तत्व मिलते हैं। किन्तु हम मेलोरी को मध्य कालीन कह कर टालने को तैयार नही, जैसे कि स्कॉट या शेनोब्रिया को हम मध्य कालीन नही मानते। मेलोरी भी उतनी ही अच्छी तरह से कहानी कहते हैं जितनी कि स्कॉट और उनकी भावुकता कभी उतनी घिनौनी नही होती जितनी कि शेनोब्रिया की, फिर भी वह पहला महान पलायन-वादी है, एक ऐसा व्यक्ति जो भयानक और घृणित वर्तमान से भाग कर अपनी भावना के सुनहरे अतीत की शरण लेता है। वास्तविकता को उन्होने त्याग दिया, बल्कि यू कहिए कि वास्तविकता का उनके लिए कोई अस्तित्व ही नही रहा। चौसर तो जैसे उनके लिए कभी हुआ ही न था, और अगर मेलोरी ने *कैण्टरबरी टेल्स* को कभी पढा भी हो तो इसमें सन्देह नही कि उन्हे भोडा समझ कर नाक सिकोड ली होगी। एक तरह से *यूफिअस*[4] और *आर्कोडिया*[5] उसकी रोमाण्टिक परम्परा के अग थे, जैसे कि '*फेयरी क्वीन*'[6] था। कविता या भावपूर्ण गद्य के रूप में उनके गुणो से इन्कार नही किया जा सकता, किन्तु उन्होने अंग्रेजी कल्पना को कथा के क्षेत्र में पनपने से रोका। किन्तु शायद इस बात को अधिक महत्व न देना चाहिए। कारण कि उस काल में हमारी सारी

श्रेष्ठतम राष्ट्रीय प्रतिभा नाटकीय काव्य की रचना में व्यस्त थी। एलिजाबेथ युग ने उल्लेखनीय रूप में उपन्यास को आगे नही बढाया, यद्यपि यूफिश्रस की परम्परा के विरोध में शराबखानों और चोर उचक्को की कुछ शानदार कथाए इस काल में रची गयी।

यही बात सत्रहवी शताब्दी के बारे में भी कही जा सकती है। किन्तु यहा, मेरी समझ में, एक बात ध्यान देने योग्य है। अपनी आत्मकथा में एच जी वेल्स ने अनजान में ऐसे आत्मसमालोचनात्मक विचार प्रकट किये हैं, जिनका अत्यत गहरा महत्व है। उन्होंने लिखा है: "चरित्र का विस्तार के साथ अध्ययन एक वयस्क धधा है, एक दार्शनिक धधा है। मेरे जीवन का इतना बडा हिस्सा एक लम्बी और फैली हुई नाबालिगी में, आम तौर से दुनिया से जूझने में, बीता है कि मैंने अपने जीवन के बाद के वर्षों में ही चरित्रो का मुख्य रूप से अध्ययन करना शुरू किया। मेरे लिए यह आवश्यक था कि पहले मैं उस ढाचे का पुनर्निर्माण करू जिसके अन्दर व्यक्तियों का पूरा जीवन बीतता है। तभी मैं उसको इस ढाचे के अन्दर फिट बैठाने की व्यक्तिगत समस्याओ पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता था।"

यह सच है कि उपन्यास लेखन एक दार्शनिक धधा है। विश्व के महान उपन्यास—*डौन क्विगजोट, गारगनतुआ और पान्तागुएल, रौबिन्सन क्रूसो, जोनाथन वाइल्ड, जाक्वे ला फैटेलिस्त,*[1] *ला रूज ए ला न्वायर,*[2] *युद्ध और शान्ति, ला एजूकेशन सेन्टिमेंटल,*[3] *वुदरिंग हाइट्स,*[4] *दि वे आफ आल फ्लेश*[5]—ठीक इसीलिए महान हैं कि उनमें चिन्तन का यह गुण निहित है, कि वे जीवन की अत्यत भावपूर्ण या यू कहिए कि प्रेरणापूर्ण टीका हैं। यही वह गुण है जिससे कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रथम और द्वितीय कोटि की रचनाओ की परख होती है। यह सच है कि अनेको दार्शनिक उपन्यास लिखने में बुरी तरह विफल रहे हैं, किन्तु कोई भी उपन्यासकार अपने पात्रो की विशिष्टताओ से सामान्य नतीजे निकालने की उस क्षमता के बिना रचना नही कर सका है, जो कि जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण से पैदा होती है।

सत्रहवीं शताब्दी ने महान उपन्यास नही पैदा किये, किन्तु उसने उन दार्शनिकों को अवश्य पैदा किया जिनकी वदौलत आगामी शताब्दी की जीतें सम्भव हो सकी। जाने क्यों, वरवस कुछ ऐसा अनुभव होता है कि अठारहवी शताब्दी अंग्रेजी कथासाहित्य का इसीलिए सिरमौर है कि वह अंग्रेजी दर्शन के सर्वोच्च काल के फौरन वाद आती है। अंग्रेजी दर्शन हमारे देश की पूजीवादी क्रान्ति का फल था और वह गहरे रूप में भौतिकवादी था। मार्क्स के शब्दों में "भौतिकवाद ग्रेट ब्रिटेन की सच्ची सन्तान है। वह एक इंग्लिश स्कूल मैन — डन्स स्कोउटस — ही था जिसने यह सवाल उठाया था कि 'क्या पदार्थ सोच नही सकता।'"[1] बर्कले ने, जो पहला अंग्रेज भाववादी था, लौक के एन्द्रियगोचर दर्शन का केवल उल्टा रूप अपनाया। इसी प्रकार स्टर्न ने रैबिले के भौतिकवाद और सर्वेण्टीज की कल्पनाशक्ति पर केवल भावुकता का आवरण चढ़ाकर पेश किया।

उपन्यास के वास्तविक संस्थापक, रैबिले और सर्वेण्टीज, अपने उत्तराधिकारियो से इस अर्थ में अधिक भाग्यवान थे कि उन्हे उस नये समाज में नहीं रहना पड़ा जिसके कि वे अग्रदूत थे। वे सन्तरण काल के जीव थे, उन क्रान्तिकारी तूफानो की सन्तान थे जिन्होंने मध्यकालीन सामन्तवाद को ढहा दिया। वे नये विचारो के महानतम प्रवाह से, मानव के उस रोमांचकारी पुनर्जन्म से, अनुप्राणित थे जिसकी इतिहास में कोई मिसाल नही मिलती (इस विवादास्पद प्रश्न को छोड़ दीजिए कि आज भी हम वैसे ही दौर में प्रवेश कर रहे हैं या नही)।

उनकी दोनो कृतिया जीवन की स्फूर्ति की, कल्पना-शक्ति और भाषा की समृद्धता की दृष्टि से आज भी बेजोड़ हैं। दो संसारो के बीच वे खड़े थे। पुरानी दुनिया के व्यसनो का, बुराइयों का, वे उपहास करते और धज्जियां उड़ाते थे। किन्तु नवीन को भी वे आंखें मूद कर नही ग्रहण करते थे। शेक्सपीयर में भी यही बात थी, और सच पूछिये तो रेनैसां काल की अन्य महान विभूतियों में भी यह विशेषता मौजूद थी। तब से मानव ने उस बहादुर नयी दुनिया को जिसे इन लोगों ने अपनी आल्हाद-

पूर्ण किन्तु सर्तक आखों के सामने जन्म लेते देखा था, काबू में करके जितना पाया उतना ही उसकी तुलना में अपना व्यक्तित्व भी खो दिया।

रैबिले जीवन के उस दयनीय, विचित्र तथा अल्हादपूर्ण साधन, मानवशरीर की स्वतन्त्रता को उभारते हैं और उस शरीर में वसने वाले मस्तिष्क को, उस मस्तिष्क को जिसने अभी-अभी नये सिरे से जीवन की खोज शुरू की है, सघर्ष का एक नया नारा प्रदान करते हैं : "जो जी में आये करो !" भाषा के क्षेत्र में भी उन्होने उतनी ही आश्चर्यजनक क्रान्ति का सूत्रपात किया जितनी कि विचारो के क्षेत्र में। फ्रासीसी भाषा के किसी भी अच्छे ऐतिहासिक व्याकरण के अध्ययन मे यह वात प्रत्यक्ष हो जायगी। यहा यह वात ध्यान देने योग्य है कि भाषा के क्रान्तिकारी प्रत्यावर्तन में लेखक अत्यत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रर्नसा के बाद फ्रासीसी भाषा में जीवन का अगला महान प्रवाह आता है रोमाण्टिक आदोलन के रूप में, जो कि महान क्रान्ति की सन्तान था। हमारी भाषा के वारे में भी, मोटी तौर से, यह वात सच है।

सर्वेण्टीज के कृतित्व की क्रान्तिकारी प्रकृति प्रत्यक्ष मे अधिक परोक्ष है। उनके जीवन दृष्टिकोण का नाटक उनके दो मुख्य पात्रो के पारस्परिक सम्बधों के रूप में, और फिर वाहरी दुनिया के साथ विवक्ज़ोट तथा साको के सम्बधों के रूप में व्यक्त होता है। इस तरह उनका उपन्यास रैंविले से एक डग आगे वढा हुआ है। जो हो, इन दोनो ने उपन्यासकार के लिए आवश्यक हर हथियार गढ कर रख दिया है। रैंविले ने हास्य और भाषा का कवित्च प्रस्तुत किया, सर्वेण्टीज ने व्यग और अनुभूति की कविता दी। वे सार्वभौम प्रतिभा रखते थे और उपन्याम रूपी बहुरगी गद्य-कथा के क्षेत्र में तवमे एक भी ऐसी कृति नही लिखी ग.ी जो उनसे टक्कर ले सके।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य हैं कि ये दोनो उपन्यासकार होने के साथ-साथ कर्मठ व्यक्ति भी थे, दोनो को उत्पीडन का शिकार होना पडा, और यह कि यदि मि डेविड गार्नेट के लिए 'विशुद्ध कलाकार' के वारे में उनके साथ वातें करना सम्भव होता, तो दोनो-के-दोनो कुछ न समझ पाते। अगर काफी खीचतान के बाद, अन्त में वे इस विचित्र और

विरोधाभास युक्त धारणा का अर्थ समझ भी लेते तो दोनों, अपने-अपने
ग से, पहले उसे गले से लगाते और इसके बाद अपने मनका बोझ हल्का
करते—एक मौज में भद्दी गालियो का अम्बार लगाकर, दूसरा गम्भीरता
के साथ व्यग की बौछार करके। इस प्रकार दोनों ही इस विचित्र और
विकृत धारणा की खबर लेते।

इस प्रकार उपन्यासकारो को नये समाज के महाकाव्य लेखको को, विरासत के रूप में महान पूजी प्राप्त थी जिससे वे लाभ उठा सकते थे। अब देखना यह है कि उन्होने अपना दायित्व किस प्रकार निभाया। हमारे अपने देश में, करीब आधी शताब्दी तक, गौरव के साथ उन्होने काम किया, हालाकि वे उन ऊचाइयों पर कभी नही पहुच सके जिन्हे फ्रान्स और स्पेन के महान प्रतिभाशाली उपन्यासकार नाप चुके थे। उपन्यास एक हथियार था—राजनीतिक नारेबाजी के मोटे अर्थ में नहीं, बल्कि अपने जन्म और स्वस्थ विकास के प्रथम काल में यह एक ऐसा हथियार था जिसके द्वारा पूजीपति वर्ग के श्रेष्ठतम, सर्वाधिक कल्पनाशील प्रतिनिधियो ने नये पुरुष और स्त्री को तथा उस समाज को जिसमें कि वे रहते थे, परखा। अठारहवी शताब्दी के लेखको के बारे में यह एक सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है। वे मानव से कतराते नही थे। वे उसमें विश्वास करते थे, दुनिया को काबू में करने की उसकी योग्यता में विश्वास करते थे। किन्तु एक क्षण के लिए भी वे इस दुनिया की क्रूरता और बेइन्साफी की ओर से अपनी आखें नही मूदते थे। आखिर उनके नायक इसी दुनिया के ही तो अग थे।

फीलिडग पर यह दोष लगाया जाता है कि उसके उपन्यासो में "उपदेशो" की भरमार है। किन्तु अगर सब उपदेशो को हटा दिया जाय तो समाज की उनकी आलोचना फिर भी लुप्त नही होगी, क्योंकि वह स्वय उनकी कहानी में निहित है। हा, ऐसा करने पर अग्रेजी भाषा में कुछ श्रेष्ठतम निबध अवश्य गायब हो जायेंगे। अच्छा यही है कि इन निबधों को वही रहने दिया जाय और इस दुखद सत्य को स्वीकार कर लिया जाय कि फीन्डिग जो, हैनरी जेम्स[1] की तो बात ही छोडिये, फ्लौबर्ट तथा गौन्कोर्ट बन्धुओ से भी पहले हुआ था, सभ्य साहित्यिक समाज के

उन कतिनय नियमों से सचमुच परिचित न था, जिनका उपन्यास लिखते समय पालन करना जरूरी समझा जाता है। वह पहला अंग्रेज था जो यह समझ सका कि उपन्यासकार का कर्तव्य जीवन के बारे में सत्य को, जिस रूप में वह उसे देखता है, उसी रूप में प्रकट करना है, और सत्य को उसने अपने ही रंग में प्रकट किया। *जोनाथन वाइल्ड* में उसने जीवन के इस सत्य को जिस रूप में व्यक्त किया, वैसे न कोई उसके पहले कर सका और न बाद में, यहा तक कि स्विफ्ट भी उसकी ऊचाइयो को छूने में कभी सफल नहीं हो सका। सत्य की यह अभिव्यक्ति एक ऐसे भयानक और निर्मम आक्रोश के साथ उसने की, जो अमर है, क्योंकि वह मानवीय जीवन के अधोपतन के प्रति मानवीय आक्रोश का मूर्त रूप है।

फील्डिंग की यह आलोचना की गयी है—उल्लेखनीय रूप में *अंग्रेज उपन्यासकार* में श्री डेविड गार्नेट के निबंध में—कि दुःख दर्द के प्रति उनका एक ऐसा निर्मम रवैया है जो संवेदनशीलता की कमी को व्यक्त करता है। यह सच है कि मानव हृदय की कुछ ऐसी गहनतम गहराइया हैं जिन्हें उनके कृतित्व में अभिव्यक्ति नहीं मिली, क्योंकि वह अन्तर्मुखी लेखक न होकर बहिर्मुखी लेखक थे, और यदि यह कमी कहीं-कहीं उनकी निरीक्षण शक्ति में बाधक होती है, तो यह कहना अनुचित न होगा कि रिचर्डसन, स्टर्न और रूसो जैसे अन्तर्मुखी लेखको ने कदाचित् वस्तुगत जगत को त्याग कर और भी अधिक खोया है, और उनकी दृष्टि और भी अधिक सकुचित हो गयी है।

किन्तु उपन्यासकार फील्डिंग पर हृदयहीनता का यह आरोप अनुचित और अन्यायपूर्ण है। वह एक हृदयहीन दुनिया में, विजयी पूंजीवाद की दुनिया में, रहता था। वह उस काल में रहता था जबकि अंग्रेज सामन्त अंग्रेज किसान को कुचल कर नेस्तनाबूद कर रहे थे, जबकि अंग्रेज लुटेरे भयानक और अनैतिक (निर्गुण अर्थ में) तरीको से इण्डीज की सम्पदा पर हाथ साफ कर रहे थे और इस लूटे हुए धन के संचय से देश में औद्योगिक क्रान्ति की जमीन तैयार की जा रही थी। वह विचित्र विभूति, वारेन हेस्टिंग्स,[1] पूर्व से बदला लेने के लिए जिसे हमने अंग्रेजी चंगेज खा बना कर भेजा था, फील्डिंग के दिनों में अभी बच्चा था।

थे। रिचर्डसन ने डबडबाई आखों से, किन्तु सचाई के साथ, मानव हृदय की अत्यत गहनतम भावनाओ को प्रकट किया। जीवन के बारे में फील्डिग जैसे अडिग दृष्टिकोण तथा वास्तविकता की मजबूत पकड की अगर उनमें कसर न होती तो वह विश्व के श्रेष्ठतम उपन्यासकारो में स्थान पाते। लेखक में जिन गुणो का अत्यत प्रत्यक्ष अभाव हो, उन गुणो की उससे कामना करना है तो बेकार की बात, किन्तु रिचर्डसन के अभावों पर यह बेकार का खेद सर्वथा असगत नही है, कारण कि इन अभावों ने उन्हें, अन्यायपूर्वक किन्तु अनिवार्यत, अजायबघर की चीज बना दिया —एक जीवित लेखक के बजाय वह एक ऐतिहासिक तथा साहित्यिक "प्रभाव" मात्र रह गये हैं।

वास्तविकता से इस पलायन को स्टर्न ने और भी आगे बढाया। रिचर्डसन जहा अपने पात्रो की केवल भावनाओं का ही चित्रण करते थे, और बावजूद इसके कि वह चिट्ठी-पत्री के रूप में अपनी कहानी कहते थे, (उनका यह ढग फ्रान्स से उधार लिया हुआ तथा अपने घरेलू अनुभव पर आधारित था) समय और काल की पृष्ठभूमि में कहानी कहने की परम्परा को उन्होंने नही छोडा था। स्टर्न ने, एक ही आघात में, यह सब नष्ट कर दिया। उनके उपन्यास *त्रिस्त्राम शैण्डी*, के नायक की केन्द्रीय समस्या को मजे में 'जीवन का बोझ ढोयें या उससे छुटकारा पायें' की समस्या कहा जा सकता है, किन्तु इतने शाब्दिक अर्थ में कि जिसकी हैमलेट सपने तक में कल्पना नही कर सकता था, और जहां तक इस पाठक का सम्बध है, वह कभी यह निश्चयपूर्वक नही जान सका कि समस्या का कोई समुचित समाधान हुआ अथवा नही। बावजूद इसके कि त्रिस्त्राम शैण्डी के जन्म की भौतिक प्रक्रिया की पेचीदगियो का इतने रोचक ढग से वर्णन किया गया है, तत्व की बात पल्ले नही पडती। स्टर्न अपने उपन्यास में समय की—काल की—हत्या करता है। क्या उपन्यास में कहानी कही जाय? हा, सापेक्षतावादी जवाब देते हैं, उपन्यास में कहानी कही जा सकती है बशर्ते कि वह एक जासूसी कहानी हो जिसमें पाठक प्रारम्भ, मध्य और अन्त का सूत्र पाने के लिए छटपटाए, निरन्तर हैरान और परेशान रहे, और बाद में स्वय लेखक से उसे सारा

रहस्य मालूम हो, अथवा, जहाँ इन बातो की ध्वनि हो जाती है,—लेखक के मित्रों को खासतौर से टीका-टिप्पणिया लिखनी पडें :

स्टर्न में महानतम उपन्यासकारो के सभी दैवी गुण मौजूद थे : वह व्यंग्य के धनी थे, उनकी कल्पना अद्भुत उडानें भरती थी, अश्लीलता में रस लेना वह जानते थे, मानवता से वह प्यार करते थे और हर वह चीज, जिससे देवबालाए जन्म के समय प्रतिभा के धनी का अभिषेक करती हैं, उनके पास मौजूद थी—हर चीज, केवल एक को छोड कर, और वह एक चीज थी अपने पात्रो को वास्तविक दुनिया में स्थापित करने की क्षमता। वह बडे चाव से अपने-आपको इंग्लैंड का रैंबिले कहा करते थे, चचा टोबी और ट्रिम[1] की रचना में सर्वेण्टीज का उन्होंने अनुसरण किया था। किन्तु वह रैंबिले नही थे, और सर्वेण्टीज तो उन्हें किसी भी हालत में नही कहा जा सकता। इन दोनो ने एक नयी दुनिया खोज निकाली थी, दोनो जीवन से लडते थे, और उसे प्यार भी करते थे, किन्तु स्टर्न तो केवल अठारहवीं शताब्दी के एक शब्दवीर भलेमानुस थे जो श्रीमन्तो के समाज के साथ पटरी बैठाने के लिए छटपटाते रहे। अपने दूर के उत्तराधिकारी स्वान्न के मुकाबले में वह कही अधिक रोचक और कही अधिक प्रतिभाशाली था, किन्तु दोनो पुस्तकों की रचना का प्रेरणास्रोत एक ही थे। स्टर्न प्रथम लेखक थे जिन्होंने समय या काल को नष्ट किया, उपन्यास में सापेक्षतावाद का सूत्रपात किया, किन्तु यह उन्होंने एक महानतर वास्तविकता के हित में नही, बल्कि इसलिए किया कि इस तरह अपने बारे में बातें करना उन्हे अधिक आसान मालूम हुआ। भाववादी पूछते हैं कि स्वय से बढ कर वास्तविकता और कौन सी है? जवाब है उन लोगो की वास्तविकता जो तुम्हे पसन्द नही करते और तुम्हें किसी गधे से कम नही समझते,—बेशक, उन्ही लोगों की वास्तविकता जो स्टर्न को अपना ढोल पीटने वाला निर्लज्ज विज्ञापक और प्राउस्ट को सामाजिक बडप्पन की सीढ़िया नापने वाला ढोंगी समझते थे। किन्तु क्या वे गलत न थे? हा, वे गलत थे, हालाकि उन्हे गलत सिद्ध करने के लिए स्टर्न और प्राउस्ट ने जिस बुरी तरह हाथ-पैर मारे, उससे रचनात्मक कलाकार के रूप में खुद उनका मूल्य कम हुआ।

अठारहवी शताब्दी का वास्तविक क्रान्तिकारी, यदि सच पूछा जाय तो उपन्यासकार था ही नही, हालाकि वह सभी काल के महानतम कल्पनाशील गद्य-लेखकों में से एक था। अठारहवी शताब्दी के फ्रान्सीसी भौतिकवाद ने एक भ्रम का पोषण किया था—यह कि शिक्षा मानव को बदल सकती है। रूसो के हृदय में यही भ्रम बसा था। निश्चय ही यह धारणा पूर्ण रूप से भ्रम नही है, बल्कि मानव का सामाजिक वातावरण यदि अनुकूल हो तो यह सच भी हो सकती है, बशर्ते कि खुद मानव भी अपने-आप को बदलने के लिए सक्रिय रूप से प्रयत्नशील हो। रूसो के सिद्धान्त ने उनके हृदय में यह विश्वास पैदा किया कि मानव-चरित्र को अच्छी दिशा में बदलने के लिए प्रकृति अत्यत शक्तिशाली प्रभावो में से एक है। यह एक दु खद भ्रम है, किन्तु इस भ्रम का पोषण करके रूसो ने साहित्य की एक बहुत बडी सेवा की,—कला के क्षेत्र में प्रकृति को फिर वापिस ला दिया। रूसो के बिना हम कभी एग्डोनहीथ[1] को नही पाते, न तॉल्स्तोय के फसल काटने वालों से हमारा परिचय होता और न कोनराद के प्रशान्त[2] से।

अठारहवी शताब्दी उपन्यास का स्वर्णयुग था। इस युग के उपन्यासो मे सर्वेण्टीज और रैबिले जैसी अद्भुत कल्पना की उडान तो नही थी, जो यह दिखा सके कि कल्पना किस प्रकार वास्तविकता को दानवी शक्ति से बदल सकती है, किन्तु वे मानव से डरे नही। और बिना किसी रू-रियायत के उन्होने जीवन के बारे में साहस के साथ खरी बात कही। उनमें व्यग्य है, और हास्य भी, और मानव को यह समझने के लिए वे बाध्य करते हैं कि व्यक्ति का एक आन्तरिक जीवन भी होता है और बाह्य जीवन भी। मानव के लिए उन्होने प्रकृति को खोज निकाला, और फील्डिंग, स्विफ्ट, वाल्तेयर, दिदेरो और रूसो की कृतियो द्वारा उन्होने मानव में यह चेतना जाग्रत की कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ इस दुनिया में भी सब कुछ श्रेष्ठ नही है। और उन्होंने मानव को जगाया ठीक समय पर ही, क्योकि अठारहवी शताब्दी की दुनिया इतिहास के सबसे महान क्रान्तिकारी भूकम्प में तबाह होने जा रही थी। किन्तु यह शताब्दी एक काम करने में विफल रही। वह एक भी ऐसा उपन्यास नही पैदा कर सकी

जो फील्डिंग के मानवीय यथार्थवाद, रिचर्डसन की संवेदनशीलता, स्टर्न के व्यंग्य-हास्य और रूसो के गहरे प्रकृति-प्रेम को एक साथ प्रस्तुत करता। उन्नीसवीं शताब्दी भी इस मामले में अधिक सफल न रही, हालांकि बालजाक और तॉल्सतोय में पहले के मुकाबले वह इस लक्ष्य के काफी निकट आ गयी। वैसे यदि समग्र रूप में देखा जाय तो, उन्नीसवी शताब्दी निस्सदेह एक पीछे हटने की शताब्दी थी, और इस पीछे हटने की क्रिया ने हमारे समय में आकर एक आतंकपूर्ण भगदड का रूप धारण कर लिया है।

५

विक्टोरिया-कालीन गतिरोध

अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में इग्लैड में उपन्यास का विकास एकाएक रुक गया। ऐसा मालूम होता था मानो देश की प्रतिभा को, जो इतनी सहजता से एक नये महाकाव्य के रूप में वह निकली थी, अब कुछ काल के लिए अन्यत्र और अन्य रूप में प्रकट होना था। गोल्ड स्मिथ की भावुकता और वालपोल का कृत्रिम रोमाण्टिसिज्म स्मौलेट, फील्डिंग और स्टर्न की उपलब्धियो के सामने इतनी निम्न कोटि के मालूम होते हैं कि देख कर दुःख होता है। नये पूजीपति वर्ग में जीवन की जो उमग थी वह अब जौन वेस्ले[1] द्वारा चलाये गये धार्मिक आन्दोलन में व्यक्त होने लगी, और व्यापार के रग में डूबे अभिजात्य वर्ग ने अपने बौद्धिक मनोरजन के लिए फ्रान्स की ओर मुह मोडा या अठारहवीं शताब्दी के अन्त के पतन-शील कवियो[2] की नैतिक बारीकियो में डूबना-उतराना शुरू किया। देश के सौभाग्य से, हमारी राष्ट्रीय प्रतिभा का काफी भाग, अमरीकी क्रान्ति और उसके बाद के नाजुक काल में, राजनीति की ओर भी उन्मुख हुआ।

असल में बात क्या थी? शताब्दी के पूर्वार्द्ध ने एक ऐसे साहित्यिक आन्दोलन को जन्म दिया था, जिसे, हमारे इतिहास में केवल एलिजेबेथ-कालीन[3] साहित्यिक ही मात करते हैं। शताब्दी के उत्तरार्द्ध ने ठहराव और पतन को जन्म दिया। अठारहवीं शताब्दी के आदि काल के लेखक मानव की उस रूप में जाच करने से नहीं डरते थे, जिसमें कि नये पूजीवादी समाज ने उसे जन्म दिया था। इस नये जीव से तत्कालीन कवि, व्यग्यकार और उपन्यास-लेखक हमेशा ही विशेष रूप से खुश नहीं रहते थे, किन्तु उन्होंने जैसा उसे पाया, उसी रूप में सच्चाई के साथ उसका चित्रण किया

था। किन्तु इसके बाद मानव से भय का, करीब-करीब घृणा का प्रादुर्भाव होता है। अब हम उसे एक क्रूर, मनमोजी, उमगी और सघर्षरत मानवीय जीव के रूप में नहीं देखते, बल्कि एक ऐसे पापी के रूप में देखते हैं जिसका उद्धार करना आवश्यक है। इस पतन का क्या रहस्य है?

इसका रहस्य खुद देश के विकासक्रम में, धन की बढ़ती हुई शक्ति में,—जिसने मानव और मानव के बीच तथा पुरुष और स्त्री के बीच के सम्बधो को विषैला बना दिया—सम्पन्नता और गरीबी के विरोध में, किसानो की हृदयहीन बेदखलियों में, तथा उन नये नगरो के जीवन की भयानक मनहूसियत में निहित है, जो पुरानी मडियों और प्रशासन केन्द्रो के स्थान पर बन रहे थे। जर्मन बादशाह के नाम पर देश का कुशासन करने वाले भ्रष्ट गुट ने अमरीकी युद्ध लड़ा था और उसमें उसकी हार हुई थी। युद्ध के नुकसान को पूरा करने के लिए भारत को लूटा गया, और इस बात को कोई साफ-साफ नहीं समझ पा रहा था कि अतलान्तिक सागर के पार पाच हजार मील की दूरी पर प्रथम जनवादी जनतत्र की स्थापना ने विश्व के इतिहास को बदल दिया है। कुछ अज्ञात पत्रकारों और एक या दो शैतान राजनीतिज्ञों के अलावा सभी इससे बेखबर थे।

जब अग्रेज उपन्यासकार फिर मानव की ओर उन्मुख हुए और उन्होंने अग्रेजी जीवन का महाकाव्य फिर रचना आरम्भ किया, उस समय तक दुनिया इतनी अधिक बदल चुकी थी कि उपन्यास पहले जैसा जरा भी नही रहा। हथियार खुट्टल हो चुका था, साथ ही कलाकार की दृष्टि भी बदल गयी थी। स्काट ने, जो कि इस नये औद्योगिक युग का प्रथम महान उपन्यासकार थे, अपने युग से एकदम भाग कर अपनी भावनाओ के गौरवमय और लुभावने अतीत में शरण ली। एक अर्थ में वह क्रान्तिकारी थे—एक नयी लीक उन्होने डाली थी, सबसे पहले उन्होंने ही साफ तौर से बताया था कि मानव को केवल देखना ही काफी नहीं है, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जाच करना भी जरूरी है। वह जानते थे कि मानव का एक अतीत भी होता है और वर्तमान भी, और अपनी अद्भुत व प्रखर प्रतिभा से उन्होंने वह निचोड निकालने का प्रयत्न किया जिसे हासिल करने में अठारहवीं शताब्दी विफल हो चुकी थी। उपन्यास

को वह एक ऐसा रूप देना चाहते थे जिसमें जीवन की कविता और गद्य का ऐक्य हो, जिसमें रूसो के प्रकृति-प्रेम, स्टर्न की भावप्रवणता तथा फील्डिंग की स्फूर्ति और विस्तार का सामन्जस्य हो।

वह इसमें विफल हुए, किन्तु यह एक गौरवपूर्ण विफलता थी, और इसके कारण ध्यान देने योग्य हैं। स्कॉट को यह कह कर ताक पर रख देने का आज फैशन-सा चल गया है कि वह एक निरा क़िस्सागो था, कि उसकी कहानियां दक्षता से गुथी हुई और असह्य भावुकता में डूबी होती थीं। मि ई एम फौर्स्टर ने उन्हें इसी रूप में देखा है, किन्तु बालज़ाक का मत इससे भिन्न था। केवल स्कॉट ही एकमात्र ऐसे उपन्यासकार हैं जिनके प्रति बालज़ाक गहरी और वास्तविक कृतज्ञता स्वीकार करते हैं, और मि फौर्स्टर के प्रति—जो कि हमारे एकमात्र बडे और सम-सामयिक उपन्यासकार हैं—पूरी श्रद्धा प्रकट करते हुए भी मैं यह कहना चाहूंगा कि मुझे बालज़ाक का मत अधिक सही जचता है।

स्कॉट को अपने महान काम में सफलता क्यों नहीं मिली? इसलिए कि अभेद्य पर्दे उसकी दृष्टि को अवरुद्ध किये हुए थे। यदि कोई आधुनिक आलोचक यहा मुझे टोक कर यह कहे कि उसका भी ठीक यही मत है तो मैं जवाब दूगा कि आधुनिक आलोचक की आखो पर भी वैसे ही पर्दे पडे हैं, अन्तर केवल इतना है कि स्कॉट, हालाकि उसकी आखो पर पर्दे पडे थे, महान प्रतिभा का धनी था। स्कॉट मानव को उसके वास्तविक रूप में नहीं देख सका। उसके पात्र इतिहास के वास्तविक पुरुष और स्त्रियां नहीं हैं, बल्कि यू कहना चाहिए कि वे उन्नीसवी शताब्दी के आदि काल के अग्रेजी उच्च मध्यम वर्गीय तथा व्यापारोन्मुख अभिजात्य वर्ग के लोग हैं, जिनको उसने अपने ही रग में रग कर पेश किया है। स्कॉट और फील्डिग के पात्रों के बीच ठीक यही अन्तर है कि उसके पुरुष व स्त्रियां भावना के रग में रगे हैं जबकि फील्डिग के पात्र प्रतिनिधि पात्र हैं।

अपनी जनता को सच्चे रूप में देखना उपन्यासकार के लिए असम्भव हो गया था। यहा तक कि जेन आस्टिन[1] भी, जो लगभग सफल हो चली थीं, हर पात्र के साथ घुटने झुका देती हैं। उनमें परख है, व्यग्य है, वह अपने पात्रों का सच्चा विश्लेषण करती हैं, यह दिखाती हैं कि उनका

और उनकी समस्याओं का उनके समाज के अन्तर्गत हल नही हो सकता, और इसके बाद चुपचाप हथियार डाल देती हैं। यह उनकी सुरक्षित और नफीस कुलीनता की दुनिया है। इसके बाहर एक और दुनिया है, लेकिन उसका अस्तित्व कभी, किसी हालत में भी, स्वीकार नहीं किया जा सकता। लगता है जैसे अब हमारा वास्ता ऐसे लेखकों से पड रहा है जिन्हें वधिया कर दिया गया है—शारीरिक अर्थ में नही, मानसिक अर्थ में। यह कहना काफी नही है कि नयी दुनिया की, विशेषकर विक्टोरिया काल की, धार्मिक कट्टरता ही इसका कारण है, क्योकि अगर ऐसा होता तो किसी भी महान् लेखक के लिए इस कट्टरता को तोडना मुश्किल न न होता (कविता के क्षेत्र में एक पीढी पहले बायरन ऐसा कर ही चुके थे)। असल में कठिनाई यह थी कि खुद लेखक ही जीवन को इस रूप में देखता था। मानव को उसके वास्तविक रूप में देखने में वह असमर्थ था, वह उसे केवल एक ऐसी छवि के रूप में देखता था जो नये औद्योगिक समाज के चौखटे में फिट बैठती थी।

थैकरे नये पूजीपति वर्ग से घृणा करते थे और अपनी इस घृणा को साफ प्रकट कर देते थे। उनका व्यग्य तीखा था। इसी प्रकार अन्य छोटे-मोटे लेखक भी व्यग्य वाण छोडते थे, किन्तु समूचे मानव को वास्तविक जगत के साथ उसके सम्बधो के बीच में अकित करने का—जैसा कि अठारहवी शताब्दी में किया गया था—साहस उन्होंने कभी नही किया। यह नही कि विक्टोरिया काल के लोग यौन विषयक चर्चा से घबराते थे। नही, ऐसा कुछ नही था बल्कि वे अपने ही ढग से—और यह ढग सदा बहुत अच्छा भी नही होता था—इस समस्या को लेकर काफी खुल खेलते थे। चाहे कितना ही भला-बुरा कहिए, बैकी शार्प पुनर्स्थापन काल के सुख्यात नाटको (रेस्टोरेशन कामेडी) की नायिकाओं से अधिक भिन्न नही है, हालाकि उसकी भाषा काफी अधिक शिष्ट है।

दिक्कत यह थी कि विक्टोरिया काल का लेखक समाज में मानव-मानव के बीच के वास्तविक सम्बधों का पर्दाफाश किए बिना पुरुष-स्त्री के सम्बधों की वस्तुस्थिति का विवेचन नहीं कर सकता था। यह अस-

घरो का, भुखमरी के पाचवें दशक ('४० से' ५० तक) का, चार्टिस्ट हड़-तालों और न्यूपोर्ट विद्रोह का काल था, एक ऐसा काल जिसमें १६८८[1] के बाद अंग्रेजी इतिहास में पहली बार देश के बुनियादी कानून में परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन योंही नही हुआ, बल्कि सशस्त्र बल-प्रयोग की धमकी से किया गया था। धन और सफलता की पूजा का यह काल था, फैक्टरियो का विकास हो रहा था और इग्लैंड के अत्यन्त सुन्दर देहात के पूरे-के-पूरे इलाके उजाडे जा रहे थे। सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में, आदर्शवादी पाखण्ड की घृणित चादर की आड में खूख्वार भौतिकता का दौर-दौरा था। विक्टोरिया कालीन परिवार का यदि सच्चा चित्र अंकित किया जाता, तो इन अन्य पहलुओ को नजरदाज करना भला कैसे सम्भव होता? विक्टोरिया कालीन 'शराफत' और धार्मिकता — सभी की पोल खुल जाती। इस शताब्दी में आगे चलकर सैम्युअल बटलर ने अपने एक उपन्यास में, जो विक्टोरिया काल के सचमुच में महान् उपन्यासो में से एक था, सच्चाई को अवश्य प्रकट किया। यह उपन्यास उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ और केवल हमारे अपने समय में ही उसे मान्यता दी गई।

बात यह नही थी कि विक्टोरिया काल के उपन्यासकार ईमानदारी से देखना नही चाहते थे, बल्कि वास्तविकता यह है कि वे देख नहीं सकते थे। उनके काल की सीमाओ के लिए उन्हें दोष देना उतनी ही मूर्खता की बात होगी जितनी कि उनकी बाकी ठोस उपलब्धियो को नजरदाज करना। उन्होने अंग्रेजी उपन्यास को निस्सन्देह नया जीवन दिया, जो, पिछली शताब्दी के मध्य में अपनी प्रथम शानदार विजय के बाद मृतप्राय हो गया था। डिकेन्स के रूप में उन्हें एक ऐसा प्रतिभाशाली लेखक प्राप्त हुआ, जिसने उपन्यास को महाकाव्य का गुण फिर पूर्णतया प्रदान किया, और अपनी प्रचुर कल्पना से ऐसी-ऐसी कहानियो, कविताओं तथा पात्रो की सृष्टि की जो कि अंग्रेजी भाषाभाषी दुनिया के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। उनके कुछ पात्र तो कहावतो की भांति जीवित हैं और हमारे आधुनिक लोक-साहित्य में उन्होने घर कर लिया है। निश्चय ही किसी भी लेखक के लिए इससे बडी उप-

लब्धि नही हो सकती। केवल प्रतिभा, मानव-प्रेम और जीवन की कविता की अनुभूति ही उसे ऐसा बना सकती हैं।

किन्तु इस बात के बावजूद डिकेन्स भी अन्य समसामयिकों के समान अपने युग के स्वामी नही थे। उनकी कल्पना की उडान, काव्यमय भावनाओ को जगाने की उनकी क्षमता, अनगिनत घटनाओं को गढने तथा अपने पात्रो के रूप में अपनी जनता को प्रिय लगनेवाली मानवीय कमजोरियो और गुणो का चित्रण करने की उनकी योग्यता ने पाठको को मुग्ध कर लिया। वह अपने युग के लेखक थे, हालाकि वह उस युग पर कभी छा नही सके। उन पर आक्रमण किया जाता है कि वह कलाकार नहीं थे (इस सन्दर्भ में चाहे जो कुछ भी इसका अर्थ हो), और यह कि वह पाठको के लेखक थे, लेखकों के लेखक नहीं। अगर ऐसी बात है तो बला से। यही बात स्कॉट के बारे में भी कही जाती है, विदेशी लेखकों में से बालज़ाक पर जिनका प्रभाव सबसे अधिक था, और बालज़ाक ही उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर छाये थे। तॉल्स-तोय को बाहर के जिन लेखको ने प्रभावित किया उनमें से शायद डिकेन्स का असर सबसे अधिक था, और तॉल्सतोय ही उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध पर छाये थे।

क्या कारण है कि स्कॉट बालज़ाक की भाति प्रभावशाली नही हो सके, या डिकेन्स तॉल्सतोय की बुलन्दियो को नही छू सके? डिकेन्स और स्कॉट के पात्रो में हमेशा किसी चीज की कमी क्यो खटकती है? इसका कारण यह है कि वे अपने समाज की सतही शराफत को भेद कर उसकी ओट में हो रहे मानव के उत्तरोत्तर पतन को नही देख सके। चूकि वे इस प्रक्रिया को नही देख सके, इसलिए वे अपने समसामयिकों के वास्तविक गौरव को न देख सके, और न अपने युग के वीरत्व को ही उन्होने पहचाना। विक्टोरिया काल के उपन्यासकार विजयी मध्यम वर्ग के मापदण्डो के छिछनेपन से तो खूब परिचित थे, और इस छिछलेपन की बखूबी चिन्दिया उडाने की सामर्थ्य भी उनमें थी किन्तु वे आत्मिक विघटन की गहरी प्रक्रिया को नही देख पाते थे। पूजीवादी समाज के कमीनेपन को देखना उनकी सामर्थ्य से परे था।

डिकेन्स पर पाठको ने पत्रो की वर्षा की थी कि वह नन्ही नेल[1] को मरने न दें। किन्तु हार्डी को उल्टी गालिया सुननी पडी और दमन के भय का सामना करना पडा, जबकि ब्रिटिश चैनल के उस पार, जहा साहित्य में काफी ईमानदारी बरती जाती थी और कला के क्षेत्र में साहस की कमी न थी, फ्लौबर्ट, गौन्कोर्ट बन्धुओ तथा जोला को मुजरिमों की भाति अदालत में घसीटा गया। इन दो चरम अवस्थाओं के बीच उपन्यास की नौका अनिवार्य रूप से डूबती दिखाई देती थी। "समाज"—हमारा तात्पर्य शासक वर्ग से है—इस बात की इजाजत नही दे सकता था कि "पब्लिक" को भ्रष्ट किया जाय, हालांकि अपने तमाम जबरदस्त साधनों से वह खुद उसे नैतिक और आध्यात्मिक—दोनो ही तरह से भ्रष्ट कर रहा था। अग्रेजी उपन्यास की शानदार परम्परा को आगे बढ़ाने के इच्छुक लेखक के लिए अब यह सम्भव नही रहा था कि वह अपने आप को अलग रख कर राष्ट्र के जीवन का निरीक्षण कर सके और मौके के अनुसार अपने गुस्से, व्यग्य, दया अथवा क्रूरता के भावो को व्यक्त कर सके। अठारहवीं शताब्दी के लेखक को यह सुविधा प्राप्त थी। असल में अत्यत सीमित सख्या में उसके धनी और विशेषाधिकार प्राप्त पात्र ही उसकी पुस्तको को पढ पाते थे। इन पात्रो के बारे में चाहे जितना खुल कर, सचाई के साथ, लिखा जा सकता था, क्योकि इनकी सामाजिक स्थिति सुरक्षित थी, और साहित्य की मानवीय परम्परा में पले होने के कारण इतना तो था ही कि वे, बिना घबराये, उपन्यासकार के तिरस्कार को बर्दाश्त कर सकते।

किन्तु डिकेन्स की स्थिति कैसी थी? उनका अपना लन्दन उनकी पुस्तको को पढ़ता था। वह और उनका लन्दन अभिन्न थे। अगर वह सात घडियालो वाले नगर[1] के जीवन को उसी रूप में देख पाते जैसा कि वह वस्तुत था, तो उनकी आखो के सामने एक अत्यत भयानक चित्र उभर आता, उनके नाम पर एक अच्छा खासा द्वन्द्व उठ खडा होता, यह भी सम्भव है कि वह इस बोझ को न सम्भाल पाते और अपने प्रिय नगर से घृणा और नफरत के साथ मुह फेर लेते। उन्होने वास्तविकता पर भावुकता का मुलम्मा चढ़ा कर पेश करने का आसान रास्ता अपनाया। फ्रान्स में वास्तविकता और रोमाण्टिसिज्म के द्वन्द्व को दूसरे तरीकों से हल

किया गया — प्रत्यक्षत अधिक ईमानदार तरीको से, हालाकि अन्त में वे फलप्रद नहीं सिद्ध हुए। इस प्रकार डिकेन्स भी, जो कि अंग्रेजी उपन्यास की गौरवशाली परम्परा के अन्तिम महान प्रतिनिधि कहलाने का कुछ अधिकार रखते हैं, अपनी कला की उच्चतम कसौटी पर पूरा नही उतरते। उनके पास कल्पना थी, किन्तु कविता नही थी; हास्य था, व्यग्य नहीं था; भाव थे, अनुभूति नही थी, अपने युग का चित्र तो उन्होने प्रस्तुत किया, अपने युग को वह व्यक्त नही कर सके, उन्होंने वास्तविकता से समझौता तो किया, एक नये रोमाण्टिसिज्म की सृष्टि नहीं कर सके।

डिकेन्स को छोड कर — जिनमें फिर भी सार्वभौमिक प्रतिभा का कुछ अश है — विक्टोरिया काल में उपन्यास, अधिकाधिक विशिष्टीकरण के साथ, विच्छृखल होता जाता है। *टौम जोन्स* जैसे उपन्यास के स्थान पर अब हास्य के, साहसिक वृत्तान्त के, राह-बाट तथा जुर्म आदि के, अलग-अलग उपन्यास सामने आते हैं। सर्वेण्टीज जहा कल्पना और कविता का हास्य और स्वप्नलोकी चित्रो के साथ मेल बैठा सकते थे, वहा अब विशुद्ध काल्पनिक तथा कवितामय और विशुद्ध हास्य तथा स्वप्नलौकिक उपन्यास नजर आते हैं। जीवन के प्रति वस्तुगत रवैये से आत्मगत रवैये को अन्तिम रूप से अलग करने की चेष्टा, जो अठारहवी शताब्दी में ही स्पष्टत प्रकट हो गयी थी, निस्सदेह हमारे काल तक के लिए — जो कि व्यक्ति के सकट का काल है — रोक दी जाती है। फिर भी, कुल मिला कर, उन्नीसवी शताब्दी का काल परम्परागत रूप के विच्छिन्न होने का काल है। मि. फोर्स्टर की पुस्तक *उपन्यास के पहलू* में इसका प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इस पुस्तक में उपन्यास अनेक श्रेणियो में विभाजित है कहानी-प्रधान उपन्यास, कल्पना-प्रधान उपन्यास, भविष्य-द्योतक उपन्यास। यह विभाजन एकदम सजग प्रयास नहीं है, फिर भी पुस्तक में मौजूद तो है ही।

सच तो यह है कि उन्नीसवी शताब्दी में पूजीवाद की परिस्थितिया इस कृत्रिम विभाजन को जन्म देती है तथा इसे अनिवार्य बनाती हैं। उपन्यास की प्रकृति से इसका कोई वास्ता नहीं है। किन्तु आप आपत्ति कर सकते हैं कि एमिली ब्रान्ते कृत विशुद्ध रूप से 'भविष्यगर्भित'

घर से दस-एक मील से भी कम दूर, एक ऐसे समाज में हुआ जिसमें ब्रॉन्ते बहनों के समय से कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ था, जहां ग्रामवेल के कौतुक की याद अभी ताजा थी। उसे एमिली के इस उपन्यास में ऐसी कोई चीज नहीं नजर आती जिसे उस अर्थ में "विशुद्ध" कविता कहा जा सके, जिसमें कि इस विचित्र वाक्यांश के प्रेमी इसका प्रयोग करते हैं। मानव-वेदना की यह एक ऐसी भीषण और भयानक चीत्कार है, जैसी विक्टोरिया काल का इंग्लैंड तक किसी मानव के हृदय से इससे पहले न निकाल सका।

वास्तव में इस युग की तीन महानतम पुस्तकें वेदना की ऐसी ही पुकारें थी। *वूदरिंग हाइट्स*, *जूड द ऑब्स्क्योर*[1] और *वे आफ आल-फ्लेश* अंग्रेजी प्रतिभा के घोषणा पत्र थे, जिनका यह ऐलान था कि पूंजीवादी समाज में पूर्ण मानवीय जीवन की उपलब्धि असम्भव है। पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम की दशा थी एक परित्यक्ता जैसी, जिसे शीत में चीखते-चिल्लाते कछार में खदेड दिया जाता है। अपने बच्चो के प्रति मनुष्य का प्रेम अन्त में उन्हें ऑक्सफोर्ड गरीब घर में पहुचा देता है, मानो वे किसी किसान के सूअर हो, और ईमानदारी, बुद्धिमत्ता तथा सादगी आपके उन्नीसवीं शताब्दी के नायक को जेल पहुचा देती है, जहा से उसे छुटकारा उसी समय मिलता है जबकि चची अलेथिया से प्राप्त उत्तर-पश्चिमी रेलवे के सत्तर हजार पौण्ड के शेयरो की अप्रत्याशित भेंट की जमानत से उसकी आजादी खरीदी जाती है। ये तीनो पुस्तकें डिकेन्स से बहुत दूर हैं, डिकेन्स से भिन्न वे एक दूसरी ही दुनिया की चीज हैं और वे, एक तरह से, केवल भीमाकार खण्ड, भग्न प्रतिमाए हैं। किन्तु उनमें उपन्यास की असली परम्परा को जीवित रखा गया है। वास्तविकता पर काबू पाने के अपने सघर्ष में—उस निरन्तर रचनात्मक सग्राम में, जिसमे डिकेन्स ने सघर्ष का झडा उतार कर भावुकता का समझौतावादी सफेद झडा फहराया था—भविष्य के लेखक इन उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण करेंगे और कृतज्ञता के साथ उनका स्मरण करेंगे।

सात

बालज़ाक, फ्लौबर्ट और गौन्कोर्ट बन्धु

१८५४ में न्यू यार्क ट्रिब्यून में प्रकाशित अपने एक लेख के अन्त में मार्क्स ने विक्टोरिया काल के यथार्थवादियों का उल्लेख करते हुए लिखा था

"इग्लेंड के मौजूदा प्रतिभाशाली उपन्यासकारों के दल ने — जिनके चित्रमय और सजीव वर्णनो ने दुनिया के सामने सम्मिलित रूप से सारे राजनीतिज्ञों, पत्रकारो और नैतिकता के प्रचारको से अधिक राजनीतिक और सामाजिक सत्यो को उभार कर रखा है,—मध्यम वर्ग के सभी हिस्सों का चित्र खीचा है। सभी प्रकार के 'व्यापार' को भोडा समझकर तिरस्कार करने वाले सरकारी स्टाक के मालिक और 'सभ्य' महाजन से लेकर छोटे दूकानदार और वकील के मुशी तक, किसी को उन्होंने नही छोडा है। और किस रूप में वर्णन किया है डिकेन्स, थैकरे, शार्लोट ब्रॉन्ते और श्रीमती गास्केल ने उनका? आत्मप्रवचना, पाखण्ड, तुच्छ निरकुशता और अज्ञान के पुतलो के रूप में। और इस वर्ग के माथे पर कलक की भाति अकित सभ्य जगत का यह टकसाली कथन कि समाज में अपने से ऊचों के सामने वह दात निपोरता है और अपने से छोटो के साथ तानाशाही बरतता है, उनके फैसले की पुष्टि कर देता है।"[1]

करीब-करीब उन्ही दिनो जबकि न्यू यार्क के समाचारपत्र में ये शब्द प्रकाशित हुए थे, शारीरिक यत्रणा से त्रस्त फ्लौबर्ट ने अपने मित्र लुई बोइलहेत को लिखा "रेचक, जुल्लाब, अर्क, जोंकें, बुखार दस्त, तीन रात हो गई बिना आख लगे। और बुर्जुआ वर्ग के प्रति अपार

झल्लाहट, आदि-आदि। यह है सप्ताह भर का हाल, श्रीमान।" अंग्रेज और फ्रान्सीसी उपन्यासकार समान रूप से एक ही समस्या से उलझे थे—वह यह कि एक ऐसे समाज को कलात्मक रूप और अभिव्यक्ति कैसे दी जाए जो कि उन्हें स्वीकार नही है। इंग्लैंड में उन्होने इस समस्या का हल किया अन्त में केवल वास्तविकता से एक तरह का समझौता करके, किन्तु फ्रान्स का समूचा इतिहास ऐसा था कि उस देश में इस तरह का समझौता करना असम्भव हो गया। आधुनिक दुनिया का अन्य कोई भी देश इतने भयकर सघर्षों में से नही गुजरा था जितना कि फ्रान्स। पहले महान क्रान्ति, उसके बाद बीस वर्षों तक युद्धो का सिलसिला, जिनके दौरान में, १८१४ में अन्तिम विनाश तक, फ्रान्स की सेना योरप के सामती राज्यों को एक छोर से दूसरे छोर तक रौंदती हुई बढ चली और फिर वापस लौटी।

नैपोलियन अन्तिम महान विश्व विजेता था, किन्तु वह पहला बुर्जुआ सम्राट भी था। फ्रान्स उस भारी भरकम युद्ध तत्र के बोझ को केवल इसलिए सभाल पाया कि उन वर्षो में वह अपने प्रतिद्वन्द्वी इंग्लैंड के बराबर आने लगा, और उसने अपने उद्योगो का विकास आरम्भ कर दिया, विद्युत से चलने वाली मशीनो को बडे पैमाने पर प्रचलित किया और अपने उन्मुक्त किसान वर्ग के बल पर एक विशाल नई मण्डी का निर्माण शुरू कर दिया। नैपोलियन के पतन के एक पीढी बाद जब यह प्रक्रिया पूरी हुई तो एक अजीब विरोधाभास देखने में आया। वह यह कि एक सर्वथा नूतन फ्रान्स पर, एक ऐसे फ्रान्स पर जिसमें धन की तूती बोलती थी, और जो महाजनों, व्यापारियो तथा उद्योगपतियों का फ्रान्स था, वही सामन्ती अभिजात्य वर्ग शासन कर रहा था जिसे क्रान्ति ने जाहिरा तौर पर चूर-चूर कर दिया था। किन्तु अपने पुराने शासकों से युक्त इस नये फ्रान्स की वीरतापूर्ण परम्परा मूल रूप से क्रान्तिकारी थी—एक ओर इसके क्रान्तिकारी जैकोबिन थे, और दूसरी ओर नैपोलियन के सैनिक।

इस शताब्दी की महान प्रतिभा बालजाक ने, सचेष्ट भाव से, इस समाज का 'प्रकृत इतिहास' लिखने का बीड़ा उठाया। उसी बाल-

ब्राक ने, जो स्वय एक नृपतन्त्रवादी, उत्तराधिकारवादी और कैथोलिक धर्म के अनुयायी थे। उनकी रचना *कामेडी ह्यूमेन* — मानव-जीवन के अध्ययन का वह विश्वकोष — उनके युग का एक क्रान्तिकारी चित्र था। क्रान्तिकारी इसलिए नहीं कि लेखक का ऐसा इरादा था, बल्कि इसलिए कि उसमें सच्चाई के साथ अपने समय के आन्तरिक जीवन का वर्णन किया गया है। अंग्रेज उपन्सकार मार्गरेट हार्कनैस के नाम अपने एक पत्र में ऐंगेल्स ने बालज़ाक की यथार्थवादी शैली की *सचाई* पर जोर दिया था "बालज़ाक ने, जिसे मैं आगे-पीछे के तमाम ज़ोलाओ से[1] यथार्थवाद का कहीं बडा उस्ताद मानता हू, अपने *कामेडी ह्यूमेन* में हमें फ्रान्सीसी समाज का एक अत्यत अद्भुत यथार्थवादी इतिहास दिया है, जिसमें सिलसिलेवार तरीके से, १८१६ से १८४८ तक लगभग साल-दर-साल सामतों के उस समाज पर उदयीमान बुर्जुआ वर्ग के उत्तरोत्तर बढते हुए दखल का वर्णन है, जिसने सन १८१५ के बाद अपने आपको पुनर्संगठित कर लिया था तथा जहा तक सम्भव हो सका, पुरानी फ्रान्सीसी कुलीनता और नफासत के मापदण्ड[2] को पुनर्स्थापित किया था। वह वर्णन करते हैं कि किस प्रकार इस समाज — जिसे वह आदर्श मानता था — के अन्तिम अवशेष शनै-शनै अभद्र, मालदार बुर्जुआ की दखलन्दाज़ी के सामने ध्वस्त हो गए या उसने उन्हें भ्रष्ट कर दिया। किस तरह कुलीन स्त्री, जिसकी वैवाहिक जीवन से बेवफाइया केवल अपनी महत्ता को जाहिर करने के ढग थे (विवाह के द्वारा जिस प्रकार उससे पिंड छुडाया जाता था, यह उसके सर्वथा अनुकूल था), का स्थान अब बुर्जुआ स्त्री लेती है, जो या तो नकदी के लिए, या ग्राहकों के लिए ही पति ग्रहण करती है, और इस केन्द्रीय चित्र के चारो ओर वह फ्रान्सीसी समाज का पूरा इतिहास गूथ देते हैं, जिससे, आर्थिक विवरण तक की दृष्टि से — मिसाल के लिए जैसे क्रान्ति के बाद वास्तविक तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की पुनर्व्यवस्था — मैंने जितनी अधिक जानकारी प्राप्त की है, उतनी अधिक जानकारी उस काल के तमाम पेशेवर इतिहास लेखकों, अर्थशास्त्रियों तथा अंकशास्त्रियों को एक जगह जमा करने से भी नहीं मिलती। बालज़ाक, राजनीतिक दृष्टि से,

उत्तराधिकारवादी थे, और उनकी महान कृति भद्र समाज के लाइलाज ह्रास पर एक अनवरत मर्सिया है, उनकी सहानुभूति उस वर्ग के साथ है जिसके भाग्य में विनाश के सिवा और कुछ नही बदा है। किन्तु इस सब के बावजूद उनकी फब्तिया, उनका व्यग्य, कभी उतना तेज और उतनी काट करने वाला नही होता जितना कि उस समय जब वह ठीक उन पुरुषो तथा स्त्रियों को हरकत में लाते हैं जिनके साथ उनकी अत्यत गहरी सहानुभूति है,—अर्थात कुलीनो को। और उनके मुह से मुक्त प्रशसा के शब्द निकलते हैं केवल उन लोगो के लिए जो कि उनके कटुतम राजनीतिक दुश्मन हैं—क्लोइत्रे सत मैरी[1] के रिपब्लिकन वीर, वे लोग जो उन दिनो (१८३०-३६) निस्सन्देह आम जनता के प्रतिनिधि थे। यह बात कि बालजाक को इस प्रकार खुद अपनी वर्ग-सहानुभूतियो तथा राजनीतिक पूर्वग्रहो के विरुद्ध जाने के लिए बाध्य होना पडा, यह कि उन्होने अपने प्रिय कुलीनो के पतन की अनिवार्यता को *देखा* और ऐसे लोगो के रूप में उनका वर्णन किया जो इससे बेहतर अन्त के योग्य न थे, और यह कि उन्होने भविष्य के असली लोगो को ठीक वही देखा जहा कि उस समय वे मिल सकते थे—मेरी समझ में यही यथार्थवाद की महानतम विजय और वृद्ध बालजाक की सबसे बडी विशेषता है।"[2]

कामेडी ह्यूमेन की भूमिका में खुद बालजाक ने बताया है कि वह मानव को समाज की देन के रूप में देखते थे, उसे उसके प्राकृतिक वातावरण के बीच देखते थे, और यह कि वैज्ञानिक ढग से उसका अध्ययन करने की वैसी ही आकाक्षा वह भी अनुभव करते थे जैसी कि पशु-जगत का अध्ययन करने वाले महान प्राकृतिक विज्ञान शास्त्री अनुभव करते हैं। उनके राजनीतिक और धार्मिक विचार वही थे जो कि पुराने सामन्ती फ्रान्स के थे, किन्तु मानव के प्रति उनका यह रवैया, मानवीय-जीवन के सुखान्त नाटक की उनकी धारणा, क्रान्ति की, उन जैकोबिनो की, जिन्होने फ्रान्सीसी समाज की सामाजिक बेडियो को पूरी निर्ममता से चकनाचूर कर दिया था, अभियान करते उन सैनिको की देन थी जिन्होने युरोप की बादशाहतों को नैपोलियन के नेतृत्व के आगे घुटने टेकने के लिए बाध्य कर दिया था। बालजाक, इसमें कोई सदेह नही, फ्रान्स के साहित्यिक

नैपोलियन थे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में सामन्ती विचारो को उतनी ही पूर्णता के साथ नष्ट किया, जितनी पूर्णता के साथ राजनीतिक क्षेत्र में उस महान सैनिक ने सामन्ती व्यवस्था को नष्ट किया था। पुनर्स्थापन काल के फ्रान्स में पूजीवादी समाज की, नये पूजीवादी सामाजिक सम्बधो की आलोचना रोमाण्टिसिज्म के मध्यकालीन चोले में प्रकट होती थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में, और इसी प्रकार कला के क्षेत्र में भी, रोमाण्टिको की स्वच्छन्दताए वर्तमान के विरुद्ध उनके विद्रोह को तथा वर्तमान से उनके पलायन को व्यक्त करती थीं। बालज़ाक ने न तो विद्रोह किया, न पलायन। रोमाण्टिको की सारी कल्पना-प्रवीणता, उनकी कविता और यहा तक कि उनकी रहस्यवादिता बालजाक में मौजूद थी, किन्तु वह उनसे ऊपर उठे और वर्तमान पर अपने यथार्थवादी आक्रमण द्वारा एक नये साहित्य का उन्होने रास्ता दिखाया। समसामयिक जीवन की वास्तविकता को कल्पनात्मक ढग से धारण करने में वह करीब-करीब उसी पैमाने पर समर्थ हुए, जिस पर कि रैबिले और सर्वेण्टीज ने किया था। किन्तु, यह बालजाक का सौभाग्य था कि उन्होंने शताब्दी के शुरू के भाग में जीवन बिताया, जबकि राष्ट्रीय शक्ति के उस भीमाकार उभार —जिसने क्रान्ति और नैपोलियनी महाकाव्य की सृष्टि की—की ताकत और तपिश का असर चौथे और पाचवें दशक के प्रारम्भ के साहित्यिक आन्दोलन में अभी मौजूद था।

बालज़ाक और फ्लौवर्ट के बीच एक दीर्घ अन्तर है। बुर्जुआ वर्ग से घृणा और हिकारत ही फ्लौवर्ट के हृदय की सर्वोपरि भावना थी। वह अपने पत्रो पर 'बुर्जुआ फोबस'[1] के नाम से हस्ताक्षर करते थे और अपने रचनात्मक कार्य के सुदीर्घ वर्षो में, जो कि उन्होने इस घृणित वर्ग के जीवन से सम्बधित एक अकेला उपन्यास लिखने पर खर्च किए, उन्हे भारी शारीरिक तथा मानसिक वेदना सहनी पड़ी। बालजाक को अपने राजनीतिक विचारो पर, अपनी नृपतन्त्रवादिता और कैथोलिकता पर, सचेत रूप से गर्व था। गौन्कोर्ट बन्धुओ ने अपनी *डायरी* में लिखा था कि सभी काट-छाट के राजनीतिज्ञो की नेकनीयती में उनकी आस्था के खण्डित हो जाने के फलस्वरूप, अन्त में, वे "हर प्रकार की निष्ठा से

घृणा करने को तैयार हो गये, राजनीतिक लगाव के प्रति एक उपेक्षा का भाव, जो कि मुझे अपने सभी साहित्यिक मित्रों में दिखाई देता है, फ्लोवर्ट में भी और मुझ में भी। सो आप समझ सकते है कि किसी भी ध्येय के लिए प्राणाहुति देना व्यर्थ है, कि जो भी सरकार कायम हो उसी को कबूल करना चाहिए, चाहे वह कितनी ही अप्रिय क्यो न हो, कि कला के सिवा अन्य किसी चीज में विश्वास नही करना चाहिए, साहित्य के सिवा अन्य किसी धर्म को न मानना चाहिए।"

तब से अब तक न जाने कितने ऐसे लेखक, जो गोन्कोर्ट-द्वय से कही कम प्रतिभावान हैं तथा फ्लौवर्ट के साथ एक ही सास में जिनके नाम का उल्लेख तक नही किया जा सकता, इसी तरह के दृष्टिकोण में आस्था प्रकट कर चुके हैं (और अब भी करते हैं)। ऐसी स्थिति में यह अनुपयुक्त न होगा कि इस ऊपरी विश्वासहीनता और जीवन से अलगाव के स्रोत की खोज-बीन की जाये। "ऊपरी" मैं इसलिए कहता हू कि कम-से-कम फ्लौवर्ट (जो कि एक महान लेखक थे) के मामले में अलगाव का कोई प्रश्न न था, बल्कि वह तो उस बुर्जुआ समाज के विरुद्ध, जिससे वह गहरी घृणा करते थे, मृत्युपर्यन्त एक तीखे सघर्ष में रत थे।

गोन्कोर्ट वन्धु बालज़ाक को निजी रूप से जानते थे, उनकी डायरिया उस प्राणवान और रैबिलेतुल्य प्रतिभा के वारे में दिलचस्प कहानियो से भरी पडी हैं। फ्लौवर्ट भी, उनकी भाति, बालज़ाक के प्रभाव से बचे न रहे। गुरू और शिष्यों के वीच यह भारी अन्तर कैसे उत्पन्न हुआ, एक ऐसा अन्तर, जो समय का नहीं, बल्कि दृष्टिकोण का है और एक खाई की तरह उन्हें पृथक कर देता है? फ्लौबर्ट की पीढी के शुरू होने तक क्रान्ति से पैदा हुई शक्ति तथा उसकी वीरत्वपूर्ण परिणति का कुछ भी शेष नहीं रहा था। वर्गों का कटु सघर्ष और पूजीवादी समाज का लुटेरा चरित्र इतना उजागर हो गया था कि वे केवल हिकारत को जन्म देते थे, इसके प्रतिकूल बालज़ाक, जो इस समाज का निर्माण करने वाली रचनात्मक शक्ति से अभी अनुप्राणित थे, केवल अपनी जिज्ञासा शात करना चाहते थे।

, १८९३ के जनतान्त्रिक तथा जैकोबिन आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी के उदारपथी राजनीतिज्ञों के मुह में असह्य और भयानक शब्दजाल बनकर रह जाते थे। *सबको एक ही तराजू से तौलनेवाले* पूजीवाद का असली चरित्र, मानवीय मूल्यों से उसका इन्कार, आकडों का उसका दर्शन — जो हर मानवीय तथा दैवी वस्तु का मूल्य रुपये-पैसों में आकता है — प्रकट होता जा रहा था। पुराना अभिजात्य वर्ग, जिसके भ्रष्टाचार का वालजाक ने इतनी दक्षता से चित्र खींचा था, अपने पूर्व रूप की एक सडी-गली छायामात्र रह गया था, एक वीभत्स प्रेत की भ ति जो देहाती हवेलियो की विस्मृत बैठकों में बडबडाता और फुसफुसाता रहता है, या फिर वह नकद-नारायण के नये कुलीनों के रग में रग गया था। समाजवाद, जिसके केवल काल्पनिक रूप से ही फ्लोवर्ट और उसके मित्रों का परिचय था, उन्हें उतना ही मूर्खतापूर्ण तथा अवास्तविक प्रतीत होता था जितना कि उदारपथी राजनीतिज्ञों की उच्छृखलताए, जो अपनी कथनी और करनी से हर घडी अपने महान पूर्वजो के साथ विश्वासघात कर रहे थे (इसके प्रचुर प्रमाण हैं कि फ्लोवर्ट उन्हें महान पूर्वज समझते थे। एक पत्र में उन्होंने लिखा है कि "मरात मेरा प्रिय" है)। समाजवाद में भी वे सभी मूल्यो के सामान्य रूप से उसी समरूपीकरण का एक दूसरा रूप देखने थे, जिसमे कि उन्हें इतनी घृणा थी, और जो इसलिए और भी अधिक घृणित था कि वह (उन्हें ऐसा लगता) अशिक्षित जन-समूह को भावुकतावश देवता की भाति पूजता था।

१८४८ के काल में अनेक भ्रमो का अन्त हो गया। उस कटु अनुभव के वाद भला कौन ऐसा था जो कि कभी यह विश्वास करता कि सुन्दर शब्दो से पेट भरा जा सकता है? जून के वे दिन, जिनमें पेरिस के मजदूरों ने वाक्यजाल बुनने वालो के शब्दों पर भरोसा किया और स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के लिए हथियार लेकर लडे, होनहार की सूचना देते थे। फ्लौबर्ट एक उपन्सकार थे, न कि मानवता के सामाजिक इतिहास और अर्थतन्त्र के विद्यार्थी, और जून के दिनों ने उनके लिए केवल इतना ही सिद्ध किया कि कोरे नारों के खेलवाड ने ऐसी काली शक्तियो को उभार दिया है जो सभ्य समाज के अस्तित्व को

खतरे में डालती हैं। लुई नैपोलियन की जो तानाशाही बाद में स्थापित हुई, वह ठीक धूर्तों की ही तानाशाही थी, बुर्जुआ वर्ग का, तथा उस सब कुछ का चरम रूप थी, जिसकी कि विगत वर्षों की उच्छृंखलताओं से आशा की जा सकती थी। इस प्रकार *एजुकेशन सेन्टीमेण्टल* उदारपंथी बुर्जुआ वर्ग के सारे सुन्दर भ्रमों के अन्त का एक कटु और निर्मम व्यंग्य से पूर्ण चित्र है। लाल डे ने और जून १८४८ की गोलीबारी ने इन भ्रमों को सदा के लिए चूर-चूर कर दिया था। उसके बाद सामने आया साम्राज्य का भोंडा रूप। लगता था कि अब कुछ भी पहले जैसा नहीं रहेगा, सामाजिक ह्रास और सभ्यता के विनाश की सुदीर्घ प्रक्रिया को नतमस्तक होकर स्वीकार करने के अतिरिक्त अब और कोई चारा नहीं है, यह मूर्ख, कंजूस बुर्जुआ वर्ग अपने युद्धों, अपनी संकीर्ण राष्ट्रीयता और पाशविक लिप्सा से सभी कुछ नष्ट कर डालेगा।

कुछ लोग ऐसा समझ सकते हैं कि फ्लौबर्ट के इस सिद्धान्त में कि कलाकार को देवता के समान तटस्थ होना चाहिए और बालज़ाक के सामाजिक मानव के प्रकृत इतिहास सम्बंधी सिद्धान्त में कोई भारी अन्तर नहीं है। किन्तु सत्य यह है कि इनमें जमीन-आसमान का अन्तर है। बालज़ाक के वैज्ञानिक विचार सम्भवत अनगढ और गलत थे, किन्तु उनका जीवन को देखने का दृष्टिकोण सच्चे अर्थ में यथार्थवादी था। वह मानव समाज को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, एक ऐसी वस्तु के रूप में देखते थे, जो संघर्ष करती है और संघर्ष के दौरान में विकसित होती है। फ्लौबर्ट में जीवन जैसे जाम और स्थिर हो गया है। १८४८ के बाद जीवन को उसके विकास-क्रम में देखना और चित्रित करना सम्भव न रहा, कारण कि वह विकास-क्रम अत्यन्त पीड़ामय था, विरोधाभास अत्यन्त उभर आये थे। सो, जीवन उनके लिए एक जमी हुई झील बन गया। अपनी प्रेमिका को उन्होंने लिखा "मुझे जो सुन्दर मालूम होता है, मैं जो करना चाहता हूं, वह है एक ऐसी पुस्तक लिखना जो किसी चीज के बारे में न हो, बाह्य जगत से जिसका कोई लगाव न हो, अपनी शैली के आन्तरिक बल पर जो टिक सके, जैसे विश्व बिना किसी बाह्य सहायता के हवा में लटका है, एक ऐसी किताब जिसका

लगभग कोई विषय न हो, या जिसका विषय लगभग अदृश हो—यदि यह सम्भव हो सके। सबसे सुन्दर पुस्तकें वे ही हैं जिनमें सबसे कम सामग्री होती है। अभिव्यक्ति जितनी ही अधिक विचार के निकट पहुचती है, शब्द जितना ही अधिक उसे पकडना चाहता है और फिर विलीन हो जाता है, उतना ही अधिक वह सुन्दर होती है।"

इस दृष्टिकोण को अपनाने-भर की देर थी कि उस नये 'यथार्थवाद' का रास्ता खुल गया जिसमें जीवन की एक फाक को लेकर उसका बारीकी और तटस्थता के साथ वर्णन किया गया। किन्तु, कहने की आवश्यकता नही, जीवन कुछ इतनी बेकाबू वस्तु सिद्ध हुई कि कलापूर्ण ढग से उसकी फाक नही तराशी जा सकती थी। सो, उपन्यासकार अपने फाक के चुनाव में मीनमेख करने लगा, और जीवन की काया से ऐसी परिष्कृत फाकें तराशने की माग करने लगा कि अन्त में किसी उपनगर की गली या मेफेयर[1] में पार्टी से कुछ अधिक दिलचस्प बात का वर्णन न कर सका। अन्य लेखकों ने, उनकी दृष्टि को सकुचित और सकीर्ण बनाने वाले इस सिद्धान्त के खिलाफ विद्रोह करते हुए, अपनी निजी चेतना की धारा का काव्यमय चित्र प्रस्तुत करने के लिए फ्रायड और दोस्तोव्स्की से प्रेरणा ली। इस प्रकार, अन्त में, उपन्यास दो ऐसी प्रवृत्तियों में बट कर विलीन हो गया, जिनका विरोध हमारे लिए मध्य-कालीन पडितो के शास्त्रार्थो से अधिक महत्व नही रखता।

किन्तु फ्लौबर्ट, यह सब कुछ होते हुए भी, एक ईमानदार आदमी और महान कलाकार थे। उनके उत्तराधिकारियो ने जहा अपने युग की वास्तविकता पर काबू पाने के कार्य से बचकर उसकी जगह जीवन की फाक या अपनी निजी चेतना की धारा में ही सतोष कर लिया, वहा वह इतनी आसानी से हथियार डालने को तैयार न हुए। फ्लौबर्ट के पत्र एक ऐसे जीवन और एक ऐसी वास्तविकता के साथ उनके अत्यत भयानक सघर्ष की आत्मस्वीकृति हैं, जो उनके लिए दुस्सह हो उठे थे। फ्लौबर्ट जैसी घृणा के साथ बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध अन्य किसी का प्रकोप न फूटा होगा। "मानवता मेरे उगालदान में डूब जाएगी," उन्होंने लिखा है, और यहा उनका मतलब समूची मानवता से नही, बल्कि उन्नीसवीं

तेजी से ठुकरा रही थीं जिन्हें कभी हमारी सामूहिक विरासत समझा जाता था। डिकेन्स ने अपनी इस समस्या को भावुकतापूर्ण रोमाण्टिसिज्म रूपी समझौते द्वारा हल किया। इंग्लैंड की परिस्थितियों ने ऐसा करना उनके लिए अनिवार्य बना दिया था। फ्लौबर्ट, जो कि जून १८४८ के, तृतीय साम्राज्य के फ्रान्स के, प्रस्सया युद्ध और कम्यून के फ्रान्स के निवासी थे, दूसरा रास्ता अपनाने पर बाध्य हुए। न केवल उनके अपने स्वभाव ने, उनकी अडिग ईमानदारी ने भावुकता के पथ को निषिद्ध बनाया (किसी कम प्रतिभावान व्यक्ति के लिए यह कितना आसान हो सकता था, यह बाद में दौदे के दृष्टान्त से स्पष्ट हुआ), बल्कि फ्रान्स के जीवन की कहीं अधिक कठोर वास्तविकता ने उनके लिए इस पथ को अपनाना एकदम असम्भव बना दिया था। वह संघर्ष से अलग रहे, अत्यंत कष्ट सहते हुए अपने लिए एक अवास्तविक तटस्थता की उन्होंने रचना की और विशुद्ध रूपवादी रवैया अपनाकर जीवन के कुछ पहलुओं को अलग करने की चेष्टा की। बेचारे फ्लौबर्ट, जिन्हें जीवन का चित्र खींचने के प्रयास में अपने समय के किसी भी लेखक से ज्यादा भयानक कष्ट उठाने पड़े, जो अपने युग की असली नब्ज को अन्य सब लोगों से अधिक पहचानते थे, फिर भी उसे अभिव्यक्ति नहीं दे पाये थे, गहरे अनुराग और घनीभूत घृणा से जिनका रोम-रोम पगा था, ऐसे व्यक्ति के भाग्य में यह दुःखद अन्त बदा था कि वह एक बेरंग चीज, बड़े लोगों के लिए "विशुद्ध कलाकार" का एक नमूना बन कर रह जाए। "विशुद्ध कलाकार" को हमें "विशुद्ध स्त्री" से अधिक क्यों पसंद करना चाहिए, यह इस युग का एक रहस्य है। क्या निरा कलाकार, और निरी स्त्री, ही काफी नहीं है? दोनों ही दिलचस्प हैं और दोनों दुःख सहते हैं, किन्तु सुंदर कहलाने के लिए नहीं।

फ्लौबर्ट के समसामयिकों में एक अन्य कलाकार थे जो सृजन की वैसी ही वेदना में से गुजरा थे, जो हफ्तों तक अपने को इसलिए यन्त्रणा देते रहते थे कि जिस वास्तविकता पर वह हावी होने तथा अपने दिमाग में नयी शक्ल में जिसे ढालने का निश्चय कर चुके थे, उसे व्यक्त करने के लिए ठीक-ठीक शब्द पा सकें। यह कलाकार लिखते और बार-

बार लिखते थे, गढते और बारबार गढते थे, और कहीं अधिक गहराई के साथ प्रेम तथा घृणा करते थे। अन्त में अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होने विश्व को शक्तिशाली कृतिया भेंट कीं। उनका नाम था कार्ल मार्क्स। उन्होंने सफलतापूर्वक उस समस्या को—उन्नीसवी शताब्दी की दुनिया को तथा पूजीवादी समाज के ऐतिहासिक विकास को पूर्णतया समझने की समस्या को—हल किया, जिसने उनके समसामयिको में से प्रत्येक के घुटने तोड दिए थे।

"रूप से विचार जन्म लेता है," फ्लौबर्ट ने गौतिए को बताया था, जो इन शब्दों को "वस्तुगत" यथार्थवाद की इस धारा का "सर्वोपरि मन्त्र" मानते थे और इन्हें दीवारो पर अकित करने योग्य समझते थे। मार्क्स का दृष्टिकोण इससे भिन्न था—यह कि विषय रूप को निर्धारित करता है, किन्तु इन दोनो के बीच एक आपसी अन्तर-सम्बन्ध, एक ऐक्य, एक अटूट नाता है। फ्लौबर्ट का आदर्श था कि वह एक ऐसी पुस्तक लिखे जो "किसी भी चीज के बारे में न हो", जो एक विशुद्ध रूपवादी कृति हो, जिसमें तर्कसगत वस्तु तात्विक और ऐतिहासिक वस्तु से विच्छिन्न हो। इसका चरम रूप एड्मण्ड गौन्कोर्ट, ह्य इस्मैन्स[1] तथा अन्य की कृतियो में प्रकट हुआ,—एक ऐसा रूप जो निरा आत्मगत था, जिसमें वस्तु एक निष्क्रिय सामग्री के रूप में उपन्यासकार के सामने आती है, जो स्वय, निरा फोटोग्राफर बन कर रह गया।

लफार्ग ने, जो कि मार्क्स के दामाद और फ्रान्सीसी यथार्थवादियो के गहरे आलोचक थे, इन दो पद्धतियो की तुलना करते हुए लिखा है: "मार्क्स केवल सतह को ही नहीं देखते थे, बल्कि सतह को बेध कर गहराई में जाते थे और सम्बद्ध अशों के बीच आदान-प्रदान तथा पारस्परिक आन्तरिक क्रिया-प्रक्रिया का निरीक्षण करते थे। वह इन अशों में से प्रत्येक को अलग करते और उसके विकास के इतिहास की जाच करते। इसके बाद वह वस्तु तथा उसके वातावरण को लेते और बारी-बारी से एक की दूसरे पर प्रक्रिया का निरीक्षण करते। फिर लौट कर वह वस्तु के जन्म, इसमें हुए परिवर्तनो, विकासों तथा क्रान्तियों पर दृष्टि डालते हुए उसकी सूक्ष्मतम गतिविधियो का निरीक्षण करते।

पेरिस कम्यून के दिनो में उन्हें यह भविष्यवाणी फिर याद हो आई। उन्होंने लिखा "जो कुछ हो रहा है वह यह है कि मजदूर वर्गीय आबादी फ्रान्स पर पूर्ण विजय प्राप्त कर रही है, और अपनी तानाशाही के नीचे कुलीनों, पूंजीपतियो तथा किसानो को दासता की बेड़िया पहना रही है। सरकार सम्पत्तिशाली वर्गों के हाथो से निकल कर सम्पत्तिविहीनों के हाथो में जा रही है, समाज को कायम रखने में जिनके माली हित हैं, उनके हाथो से निकल कर ऐसे लोगो के हाथो में जा रही है जिनका व्यवस्था, स्थायित्व और परम्परागत विचारो की सुरक्षा में कोई हित नहीं है। आखिर को, जैसा कि मैंने कुछ वर्ष पहले कहा था, इस भू-लोक में परिवर्तन के महान विधान में शायद मजदूर वही स्थान ग्रहण करते हैं जो कि प्राचीन समाज में बर्बरों का होता था, उन्हीं की तरह वे भी विनाश और विघटन के प्रलयकर दूतो का काम करते हैं।"

फ्लौवर्ट और गोन्कोर्ट बन्धुओ ने मजदूर वर्ग को केवल विशुद्ध विनाश के दूतों के रूप में देखा। बुर्जुआ समाज के बारे में उनके मन में कोई भ्रम नही थे, वे उसकी मिथ्या, उसकी सकीर्ण राष्ट्रीयता, उसकी अनैतिकता, सभी को समरूप बनाने की उसकी ग्राम प्रवृत्ति, और उसके द्वारा मानव के पतन से घृणा तो करते थे, किन्तु इस समाज के स्थान पर एक नये समाज की वे कल्पना नही कर पाये, और यही उनके कृतित्व की बुनियादी कमजोरी थी। फ्लौवर्ट के बाद आलोचनात्मक यथार्थवाद आगे नही बढ सका, कारण कि उनके सीमाकार प्रयासों ने जैसे उसे नि सत्व कर दिया था। उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक हो गया था कि या तो वह समाज को फिर उसके गतिशील रूप में देखना शुरू करे, जैसा कि बालजाक ने किया था, या फिर अपने ही घोंघे में शरण ले, पूर्णतया आत्मगत बन जाए, समय और स्थान से इन्कार करे, और महाकाव्य के समूचे ढाचे को छिन्न-भिन्न कर डाले। इसके अलावा एक कठिनाई और थी, ऐसी कठिनाई जो सौ साल से भी अधिक समय से पनपती आ रही थी और अब अपनी उग्रतम अवस्था में पहुच चुकी थी। यह कठिनाई जीवन के बारे में एक सुसम्बद्ध दृष्टिकोण की, मानव-चरित्र का चित्रण करने की क्षमता के पूर्ण अभाव की, कठिनाई थी।

का उपन्यास जिस रूप मे विकसित हुआ, उसमें नायक की हत्या होना अनिवार्य था। यथार्थवाद के ह्रास ने इसे आवश्यम्भावी बना दिया था। *मदाम बोवेरी* को लिखने के दौरान में, फ्लौवर्ट ने अपनी रचनात्मक पद्धति के कारण यद्यपि नार्मन प्रान्त का एक अत्यत पूर्ण चित्र खीचने में लगभग उतनी ही शक्ति खर्च की जितनी की ऐम्मा के चरित्र-चित्रण में, फिर भी उनकी मुख्य दिलचस्पी अभी खुद उस स्त्री में ही थी। किन्तु एडमण्ड द गौन्कोर्ट इन्सानो के स्थान पर रगमच, अस्पताल, वेश्यावृत्ति आदि विषयो पर उपन्यास लिखने की बात सोचने लग चुके थे। जोला ने भी युद्ध पर, वन पर, वेश्यावृत्ति पर, पेरिस के बाजारो और मदिरा-पान आदि पर उपन्यासो का सिलसिला जारी रखा। फ्रासीसी यथार्थवादियो के पक्के शिष्य, आर्नोल्ड बैनेट[1] ने अपने पिता तथा स्वय अपनी जवानी पर एक बढिया उपन्यास लिखा, इसके बाद "एक परिवार का इतिहास" लिखने की घातक धुन उन पर सवार हुई। इस धुन के फलस्वरूप जिन दो नए खण्डो की उन्होने रचना की, उनकी बदौलत उनका पहले का किया-कराया भी सब चौपट हो गया। इसी प्रकार उन्होने एक बहुत ही बढिया उपन्यास लिखा जो युद्ध-पूर्व के इग्लैड के श्रेष्ठतम उपन्यासो में गिना जाता है। यह उपन्यास दो वृद्ध महिलाओ के बारे में है जिनसे वे पौटरीज[2] में परिचित हुए थे। इसके बाद वे फिर एक समाचार पत्र के मालिक, एक होटल, और वेश्यावृत्ति आदि पर उपन्यास लिखने पर (जी हा, बिल्कुल वैसे ही जैसे कि अन्य सैकडो लिख रहे थे!) उतर आए।

गौन्कोर्ट बन्धु सचेत कलाकार थे, और उनकी कृतियो को आज भी थोडे-बहुत आनन्द के साथ पढा जा सकता है। जोला भी एक प्रतिभाशाली व्यक्ति की भाति प्राणवान और रचनात्मक शक्ति के धनी थे। उनके उपन्यास अपनी रागात्मकता के कारण आज भी पठनीय हैं। किन्तु हजारो की सख्या में वे "यथार्थवादी" अध्ययन, जिनके लेखको में न तो कला है, न रागात्मकता और न ही प्रतिभा, प्रकाशित होने के महीने भर के भीतर ही अपठनीय बन जाते हैं। आधुनिक उपन्यासकार ने व्यक्तित्व के, नायक के, निर्माण का काम छोड कर साधारण परि-

उन्नीसवी शताब्दी के महान काल के उपन्यासो में प्राय एक ऐसे नायक से हमारी भेंट होती है जो युवक है, समाज से सघर्परत है, और अन्त में जिसके सारे भ्रम नष्ट हो जाते हैं, या जो समाज द्वारा परास्त कर दिया जाता है। स्टेन्ढाल के उपन्यासो का एकमात्र नायक वही है, वालजाक भी वहुधा ऐसे ही नायक को रगमच के बीच ला खडा करते हैं, करीव-करीव हर रूसी उपन्यास में केन्द्रीय पात्र वही होता है, और इगलैंड में उसे आप पेनडेनिस से लेकर रिचर्ड फेवरेल, अर्नस्ट पॉण्टिफेक्स और जूड[1] तक देख सकते हैं। यह कभी न झुकने वाला, आदर्शवादी, जोशीला और दुखी युवक एक ऐसा व्यक्तिवादी है, जो अहवाद को अपना धर्म मानने वाले समाज में अपने को नही खपा पाता। लगता है कि उस शताब्दी में अहवाद के दो रूपो—पवित्र और अपवित्र—का प्रचलन था, और पवित्र अहवादियो के लिए कोई जगह न थी—केवल हताशा, पाखण्ड, सकल्प-शक्ति का टूटना और अन्त में सभी चीजो मे विश्वास का उठ जाना ही उनके भाग्य में वदा था।

यह युवक नायक—यह सहज ही मान लिया जा सकता है—अधिकाश मामलों में लेखक की युवावस्था का, या एक ऐसे समाज के साथ उसके निजी सघर्प के किसी दौर का ही काल्पनिक प्रतिरूप होता था, जो उसके मानवतावाद को, व्यक्तिगत सुख, सम्पत्ति या स्त्री-पुरुपो के आपसी सम्बधो पर उसके विचारो को, स्वीकार न करता था। फ्लौवर्ट के पत्र उस बुर्जुआ समाज के प्रति तीखी घृणा और हिकारत से भरे हैं जो कलाकार को प्रतिष्ठा के अपने तुच्छ आदर्शों के आगे हर कदम पर झुकने के लिए वाध्य करता था। प्रतिष्ठा भी ऐसी जो अज्ञान की देन थी और नकदनारायण जिसका ठोस आधार था। फ्लौवर्ट और उसके बुद्धिजीवी साथी—जिनमें उन्नीसवी शताब्दी के सव से अच्छे और सवसे ईमानदार व्यक्ति थे—सारी सामाजिक बुराई की जड अनिवार्य शिक्षा तथा सार्वभौमिक मताधिकार में देखते थे। अनिवार्य शिक्षा के वारे में जव वे सोचते थे तो बुर्जुआ आदर्शों के अनुसार शिक्षा का रूप उनकी आखो के सामने खडा हो जाता था और

मताधिकार को वे उस मत-गणना का पर्यायवाची समझते थे जिसने दुइया नैपोलियन की बुर्जुआ तानाशाही के हाथो में सत्ता की पुष्टि की थी।

उन्नीसवी शताब्दी के पूजीवादी समाज में जीवन की एकरसता और निकृष्टता के विरुद्ध प्रतिक्रिया ने उपन्यासकार को इस बात का अवसर ही नही दिया कि वह उक्त शताब्दी में मानवीय जीवन के कुछ अत्यत दिलचस्प पहलुओ को समझ सके और उन पर महारथ प्राप्त कर सके। मजदूर वर्ग की, कुल मिला कर, उपेक्षा करना उसके लिए स्वभाविक ही था। उपन्यासकार का मजदूरो से कोई सम्पर्क नहीं था, वह उन्हे एक विचित्र और अज्ञेय दुनिया के निवासी समझता था, और केवल आगे चलकर, पेरिस कम्यून के बाद, उसने इस दुनिया की टोह लेने का कठिन प्रयास गम्भीरता से शुरू किया। एडमण्ड गौन्कोर्ट ने स्पष्ट रूप में यह लिखा है कि "निम्न जीवन" पर उपन्यास लिखने के लिए सामग्री बटोरते समय उन्हें ऐसा अनुभव होता है मानो वह पुलिस के जासूस हो, फिर भी वह इस ओर आकर्षित होते है "क्योकि मैं एक कुलीन घर का साहित्यिक आदमी हू और जनता—लोगो का रेवड कह लीजिए—मुझे एक अनजान और अनखोजी जाति की भाति, एक ऐसी 'विचित्र' वस्तु की भाति आकर्षित करती है, जिसको खोज पाने की आशा में यात्री दूर-दूर के देशो में हजारो कठिनाइया बर्दाश्त करता है।" अधिकाश लेखको की दृष्टि में मजदूर वर्ग आज दिन भी केवल दूर देश की वह "विचित्र" वस्तु बना हुआ है, बावजूद इस तथ्य के कि ऐसे दृष्टिकोण के द्वारा मानवीय व्यक्ति की रचना करना असम्भव है। एक या दो दुर्लभ अपवादों को छोड कर (मिसाल के लिए जैसे मार्क रूदरफोर्ड[1]) उपन्यासकार मजदूर वर्ग के स्त्री-पुरुषो का विश्वसनीय चित्रण करने में कभी सफल न हो सके, यहा तक कि "दो राष्ट्रो" के बीच की दीवार को तोडने की इस कठिनाई के कारण इसकी चेष्टा तक विरले ही की गयी।

किन्तु इससे भी ज्यादा ध्यान देने योग्य यह है कि बुर्जुआ उपन्यासकारो ने दो अन्य किस्म के लोगो को कल्पनात्मक साहित्य से बाहर रखा। ये वे लोग हैं जिन्होंने पूजीवादी समाज के इतिहास में सचमुच निर्णयात्मक भूमिका का निर्वाह किया था। इन दोनो में एक है वैज्ञानिक

और दूसरा पूजीवादी नेता," हमारे आधुनिक जीवन का करोडपति शासक।

विश्व के सर्वोच्च वैज्ञानिकों — आर्कीमिडीज, गैलीलियो, न्यूटन, लेवो-सियर, डार्विन, फैराडे, पाश्चर और क्लर्क मैक्सवेल — में से चार अग्रेज थे और इनमें से तीन उन्नीसवी शताब्दी के अग्रेज थे। उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम महान भौतिक विज्ञान शास्त्री हम्फ्री डेवी की सदे, कोलरिज, वर्ड्सवर्थ और उपन्यास लेखिका मारिया एजवर्थ से घनिष्ठ मित्रता थी। रसायन शास्त्री डाक्टर जोसेफ प्रीस्टले से अधिक दिलचस्प अग्रेज विरले ही हुए होंगे, किन्तु उनके यशगान में एक भी अच्छी जीवनी नही लिखी गयी (यह शायद इसलिए कि न तो वह जेस्यूट थे, न सनकी, और न वे टोरी ही थे), उन्नीसवी शताब्दी के वस्तुत अच्छे उपन्यासकारो की रचनाओ में, चिराग लेकर ढूढने पर भी, इस तथ्य का आभास तक नही मिलेगा कि विज्ञान का अस्तित्व मानव के लिए सार्वजनिक मूत्रालयो के अस्तित्व से अधिक अर्थपूर्ण है, हालाकि मूत्रालय एक उपयोगी और आवश्यक, किन्तु भद्दा प्रसाधन है। दोनो ही को साहित्य के क्षेत्र मे अलग रखा गया है। यहा तक कि हमारे अपने समय में भी, जबकि विज्ञान को पूर्ण मान्यता मिल चुकी है और मूत्रालयो ने भी साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, केवल दूसरी श्रेणी के कुछ लेखको ने ही वैज्ञा-निक का इतना अधिकार माना है कि उसे, कला की सामग्री के रूप में, अगर अधिक नही, तो वेश्या तथा अभिनेत्री के समकक्ष अवश्य रखा जा सकता है।

ऐसा न सोचिए कि हम उस रूप में वैज्ञानिक को कला की "विषय वस्तु" स्वीकार कराने के लिए दलीलें दे रहे हैं जैसे कि द गोन्कोर्ट ने अभिनेत्री को या जोला ने बूचडखाने को और आर्नोल्ड बैनेट ने ऐश्वर्यमय होटल को स्वीकार किया था। वैज्ञानिक विषय वस्तु नहीं है, वह मानव का एक ऐसा प्रतिनिधि रूप है जिसका रचनात्मक मस्तिष्क महान कलाकारो की ऊचाइयो को छूता है। वह मानव जीवन का एक अग है और उसकी उपेक्षा करके आधुनिक ससार में मानव जीवन का कोई भी सम्भव चित्र पूर्ण नही हो सकता। इस प्रकार के मनुष्य को, जो कि

हमारे युग की एक वास्तविक रचनात्मक शक्ति है, उपन्यासकार ने क्यों नजरन्दाज किया ? इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि उपन्यासकार स्वय विज्ञान से बेहद बेगाना होता है। सकीर्ण विशेषीकरण और श्रम-विभाजन की इस दुनिया मे वैज्ञानिक रचना के दायरे से वह इतना दूर और इतना अलग होता है कि मानवीय व्यक्तित्व का यह समूचा प्राणवान क्षेत्र उसके लिए अज्ञात देश के समान है। दूसरा कारण यह है कि वैज्ञानिक के व्यक्तित्व के अध्ययन में स्वय सामाजिक जीवन की परि-स्थितिया उपन्यासकार के लिए बाधक सिद्ध हुई हैं। विज्ञान हमारी दुनिया के देवताओ में से एक है, किन्तु हमारी इस दुनिया ने उसके पावो मे बेडिया भी डाल रखी हैं और उसे भ्रष्ट भी कर दिया है। कोई निडर यथार्थवादी ही उन्नीसवी शताब्दी में वैज्ञानिक का चित्रण कर सकता था। यह काम एक ऐसा व्यक्ति ही कर सकता था जो एक ओर धर्म तथा अपढ लोगो के अधविश्वासो से लोहा लेने को, और दूसरी ओर व्यापारिक भ्रष्टाचार तथा समाज-व्यवस्था की जडो का पर्दाफाश करने को तैयार होता, और आज तो उसे और भी आगे बढकर यह दिखाना होगा कि किस प्रकार समाज विज्ञान के नाश के लिए विज्ञान का प्रयोग कर रहा है।

मैं ऊपर यह कह चुका हू कि उपन्यासकार ने मानव व्यक्तित्व के एक अन्य पहलू के विकास की उपेक्षा की है। उस शताब्दी में इसकी भूमिका भी कोई कम महत्व नही रखती थी। कथा-साहित्य में उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी की उपलब्धिया काफी बडी हैं। उन सबको छान डालने पर भी महान उद्योगपति का — उस आदमी का, जिसने रेले बनाने, इस्पात मिलो का निर्माण करने, अफ्रीका की खानो में से हीरे निकालने और दलदलो और रेगिस्तानो में से नहरे काट कर सागरो को एक दूसरे से जोडने के कार्यों का सगठन-सयोजन किया — कही भी चित्रण नही मिलेगा। सम्भवत उन्नीसवी शताब्दी के उपन्यासकारो का इसमें उतना दोष नही है। १८७० में व्यापारिक जगत में अगर किसी की तूती बोलती थी तो महाजन की, और बालजाक ने उसका सच्चा चित्र देने में कोई कसर नही उठा रखी। कारखानेदार उन दिनो अपेक्षाकृत छोटा

आदमी माना जाता था। तब तक दुनिया पर शासन करने के लिए पूजी से उसका गठबन्धन नहीं हुआ था। किन्तु इस छोटे कारखानेदार या उद्योगपति को भी, अगर सच कहा जाए तो, महान यथार्थवादियो ने नजरन्दाज नही किया। शताब्दी के तृतीय और अन्तिम भाग में तथा हमारे अपने समय में ऐसा नही हुआ। कहा है सीसिल र्‌होड्स, या रौकफैलर, या क्रुप्प ? अकेले ड्रेजर ने इस किस्म के आदमी के जीवन के चित्रण की चेष्टा की है, किन्तु आमतौर पर कलाकारों ने उससे कन्नी ही काटी है, मानो वह शैतान हो जिससे बचना चाहिए। किन्तु कोई कारण नही कि शैतान को कल्पनात्मक साहित्य से अलग रखा जाए। मिल्टन को वह काफी उपयुक्त पात्र मालूम हुआ। और यदि जेस्यूट शहीद एडवर्ड कैम्पियोन एक प्रतिभाशाली लेखक का ध्यान आकर्षित कर सकता है, तो पूजीवादी शहीद आईवर क्रूगर[1] क्यो नही ध्यान आकर्षित कर सकता, जो "सपदा" के देवता के पतन के साथ ही शहीद हो गया था ?

रेनैसा काल का कलाकार खलनायक का वर्णन करने से कतराता नही था। शैक्सपीयर से अगर कोई पूछता तो वह कहते कि खलनायक के बिना जीवन पूरा नहीं होता। यह सोचना भारी अन्याय है कि खलनायक निरा नकारात्मक होता है, कि उसमें कोई प्रसाद-गुण नहीं होते, या यह कि वह केवल बुराई का साकार प्रतीक होता है। यह सच है कि आज के पूजीपतियो का रेनैसा काल के साहसिको के साथ केवल ऊपरी रूप में मेल है। वे हिंस्र थे, खूनी और क्रूर थे, किन्तु खुले रूप में, जब कि आज के पूजीपति अधेरे की ओट में यह सब करते हैं, या हिंसा और क्रूरता का काम अपने गुर्गों के हाथो में छोड देते हैं। रेनैसा काल का राजकुमार व्यभिचार तो करता था, किन्तु एक शानदार ढग से, जगलियो की तरह एकदम निर्बन्ध होकर, मानो जीवन के साथ प्रयोग कर रहा हो, मानव शरीर में जीवन की खोज कर रहा हो। किन्तु आज के अरबपति रस लेते हैं गुप्त विकृतियो में, और उनके व्यभिचार काण्ड किसी बोर्गिया[2] के दावतो से उतना नही, जितना कि फौली बर्जे[3] नृत्य मे मेल खाते हैं।

इसका यह अर्थ नही कि इन अरबपतियो में शानदार आदमी नही होते। र्‌होड्‌स उतना ही शानदार था जितना कि वह अरुचिकर था। नौर्थक्लिफ प्रतिभावान भी था और पागल भी। इन लोगो को आधुनिक जीवन की कविता से अलग नही किया जा सकता, यथार्थ पर उस विजय से अलग नही किया जा सकता जिसकी बदौलत आधुनिक समाचार पत्र का अस्तित्व सम्भव हुआ, जो, अभी हत्यारे ने गोली चलाई नही कि उस गोली से मरते हुए राजा का चित्र करीब-करीब उसी समय आपके सामने लाकर रख देता है। यह सब आधुनिक भौतिक विज्ञान का करिश्मा है। महान राष्ट्रो की गतिविधि, महान उद्देश्यो के लिए स्त्री-पुरुषो के प्रेरणादायक बलिदान—ये सब भी अरबपतियो के जीवन के साथ गुथे हैं।

फिर भी कल्पनात्मक साहित्य में उनके दर्शन नही होते। लेखक उनसे घबराता है, उन भयानक ताकतो से डरता है जो—यदि एक बार भी उसने ऐसे चरित्र का चित्रण करने का प्रयत्न किया तो—उसके पन्नो में फूट निकलेंगी। इसलिए अच्छा यही है कि स्वान्स की शान्त दुनिया की शरण लो, बाग-बगीचो, दीवानखानो, लम्बे वार्तालापो और भावो के कोमल विश्लेषणो, तथा शरीर और आत्मा के सूक्ष्मतम विकारो का आनन्द उठाओ। माना कि इन सब में भी राष्ट्रो के जीवन के स्वामी तथा महान सभ्यताओ के भाग्य का नियन्त्रण करने वाले अरबपतियो की दुनिया की छाया देखी जा सकती है, किन्तु यह छाया स्वान्स, डचेस और मौशिये द चार्ल्स को जन्म देने वाली वास्तविक दुनिया से इतनी नफासत के साथ कटी हुई तथा दूर होती है कि हम इस दुनिया के अस्तित्व को सहज ही नजरन्दाज कर सकते हैं।

इस प्रकार हमारे आधुनिक उपन्यासो से नायक और खलनायक—दोनों ही खत्म हो गये हैं। व्यक्तित्व अब कही नही दिखाई देता, खुर्दबीन की स्लाइड पर चिपकी हुई रगबिरगी कतरनो के रूप में ही अब उसका अस्तित्व है। ये कतरनें बहुधा अत्यत विचित्र, दिलचस्प या सुन्दर होती हैं, किन्तु वे जीवित स्त्री-पुरुष नही होते। व्यक्तित्व या चरित्र के विनाश के साथ, उसकी जगह पर औसत परिस्थितियो में औसत व्यक्ति

को ला विठाने, अथवा व्यक्तित्व के किसी एक पहलू को उसकी चेतना के एक अश में यान्त्रिक ढग मे अलग करके चित्रण करने के परिणामस्वरूप उपन्यास के ढाचे का तथा उसके महाकाव्यात्मक गुण का भी विनाश हो गया है। मानव अव वह व्यक्तिगत इच्छा-शक्ति न रहा जो अन्य इच्छा-शक्तियों और व्यक्तियो के माथ द्वद्व-रत थी, कारण कि आज सभी द्वद्वो पर महान मामाजिक द्वन्द्व छा गए हैं जो आधुनिक जीवन को झक्झोड और वदल रहे हैं। इसलिए, उपन्यासो में मे द्वन्द्व भी गायव हो गया है और उसकी जगह आत्मा के भीतरी मघर्षों, यौन पडयन्त्रो या हवाई वाद-विवादो ने ले ली है।

रेनैंमा से लेकर काण्ट के समय तक, सोलहवीं शताब्दी मे लेकर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक (भौतिकवाद तथा मानववाद की विरोधी प्रवृत्तियो के वावजूद), जिस सम्वद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण को कुछ-न-कुछ मफलता के माथ कायम रखा गया था, उसके स्थान पर अव किसी भी प्रकार के मम्वद्ध विश्व-दृष्टिकोण के पूर्ण विनाश ने, कही की ईट कही का रोडा जमा करने वाली दार्शनिकता ने, नीत्शे तथा वर्गसन के मकल्प और अन्तश्चेतना मम्वधी ह्रासग्रस्त कृत्रिम दर्शनो ने, फ्रायड के वासनारूढ रहस्यवाद ने, नव-काण्टपथी विभिन्न मतो के अन्तर्मुखी भाववाद ने, आसन जमाया। अन्त में मानव वुद्धि मे ही इन्कार किया गया तथा रेनैंमा और मानवतावाद को तिलाजलि दे दी गयी। इस दार्श-निक ह्रास का—जो स्वय केवल राजनीतिक प्रतिक्रान्ति की हताश वेदनाओ को ही परिलक्षित करता है—यह अनिवार्य परिणाम था। हमारी सभ्यता एरास्मस, रैंविले और मौंन्टेन मे शुरू हुई। मध्य-कालीनता की पुनरावृत्ति, रक्तशुद्धि तथा जातिवाद के मिद्धातो, धार्मिक तथा वामनारूढ रहस्यवाद, स्पेंगलर, ओटमार स्पान्न, फ्रायड आदि के साथ उसका अन्त होता है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रथम शानदार उद्घोप हमारे काल में आकर व्यक्तिवाद की पवित्रता के नाम पर व्यक्ति की मृत्यु की घोपणा के मिवा और कुछ नहीं रह गया।

एक विश्व दृष्टिकोण के, जीवन के वारे में एक ममझ के, अभाव में मानवीय व्यक्तित्व की पूर्ण तथा निर्वन्ध अभिव्यक्ति नही हो मकती।

एक ऐसे दृष्टिकोण को पाये बिना उपन्यास नये जीवन को नही पा सकता, मानवतावाद का पुनर्जन्म नही हो सकता। आज की परिस्थितियो में वह दृष्टिकोण केवल द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दृष्टिकोण ही हो सकता है, जो कला के क्षेत्र में एक नये समाजवादी यथार्थवाद का जन्मदाता हैं। १८४४ में ही लिखे गए अपने ग्र थ *होली फैमिली* मे मार्क्स और ऐंगेल्स ने बताया था कि समाजवाद से पृथक मानवतावाद का आज कोई अर्थ नही है। उन्होने लिखा था "अगर मनुष्य अपना समूचा ज्ञान और बोध आदि सवेदन की दुनिया और अपने उन अनुभवो से प्राप्त करता है जो कि सवेदन की दुनिया में उसे होते हैं, तो इसके बाद जो सवाल रह जाता है वह यह कि अनुभवगत जगत की इस प्रकार व्यवस्था की जाय कि मानव उसमें जो सचमुच में मानवीय है, उसी का अनुभव करे, यह कि वह अपने-आप को एक मानव के रूप में देखने का अभ्यस्त हो जाय [1] फ्रासीसी और अग्रेजी समाजवाद तथा साम्यवाद अमल के क्षेत्र में मानवतावाद और भौतिकवाद के इसी सयोग का प्रतिनिधित्व करते थे।"[2]

इस तर्क को पढ़ कर, इसमें सदेह नही, अनेक पाठक यह आपत्ति कर सकते हैं कि जो निष्कर्ष यहा निकाले गये हैं वे, बहुत जल्दबाजी में निकाले गये हैं और हल्के हैं। *युलीसिस* और *स्वान्स वे* में (मानव चरित्र की कल्पनात्मक सृष्टि के इस उच्चतम अर्थ में) क्या सचमुच रचनात्मक तत्व नही हैं ? क्या वैल्स की प्रारम्भिक कृतियो में—बावजूद इसके कि वह स्वय इससे विनम्रतावश इन्कार करते रहे हैं—चरित्रो की रचना नही है ? और लौरेन्स, और हक्सले भी, क्या इससे शून्य हैं ?

यह सच है कि ब्लूम[3] के रूप में जॉयस ने हमें एक मानव-चरित्र दिया है। किन्तु *युलीसिस* में केवल ब्लूम ही एकमात्र चरित्र है। डाएडालस[4] में भी हाड और मास का उतना ही अभाव है जितना कि कोनराद के मार्लो[5] में और डबलिन के वे निवासी जो एक दिन के इस ओडेसी में नजर आते हैं केवल लेखक के परिचितो के दायरे में से लिए गये लोगो की छविमात्र हैं। उनका वर्णन अच्छा है, विश्लेषण भी बारीकी से किया गया है, किन्तु वे सजीव चरित्र नही मालूम होते।

स्वय व्लूम को ले लीजिए। क्या वह सचमुच एक मानव का चित्र है? शायद वह नव्वे प्रतिशत मानव का चित्र है, कलाकार की रचना नही, वरन् फोटोग्राफ लगता है, किन्तु लेखक जिसका हमें विश्वास दिलाना चाहता है, अवश्य ही वह वह नहीं है—अयार्थ वीमवी सदी के तमाम "साधारण मानवो" का प्रतीक। वोवार और पेकुचे भी फ्रासीसी व्लूमो के यथार्थवादी फोटो के रूप में प्रेषित किये गये थे, और व्लूम से कुछ और अधिक वनने में लगभग सफल हो चले थे—वे उम "छोटे आदमी" का वीरत्वपूर्ण प्रतिरूप वनते-वनते रह गये थे, जिसके वारे में हम आजकल इतनी चर्चा मुनते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के द्वारा मानव की उपचेतना की खोज से फ्लौवर्ट सर्वथा अनिभिज्ञ थे। जॉयस उसमे परिचित थे, और यह सोचे विना नही रहा जा सकता कि यह जॉयस के लिए सर्वथा लाभप्रद नही सिद्ध हुआ। फ्लौवर्ट के साथ—हालाकि काल ने उमे फ्रायड के नये आत्म-दर्शन से वचित रखा—कम-से-कम इतना तो था कि उन्होने रैंविले को पढा था, उनको समझा और उनमें आनन्द का आनुभव किया था। जॉयस तो केवल जेस्यूटो से घृणा करते थे।

इसी प्रकार प्राउस्ट भी, मेरी समझ में, जेम्स जॉयस से अधिक सफल नही हुए। यह मच है कि वह पुरुषो और स्त्रियों को अधिक अच्छी तरह समझते है, किन्तु पेरिस की वैठको के ये दुनिया से थके-ऊवे प्रेत अभी केवल छाया मात्र ही हैं। कुछ आलोचको ने राय प्रकट की है कि प्राउस्ट को उपन्यासकार मानना ही गलत है, वे तो निवधकार हैं, आज के मौन्टेन हैं। अगर मौन्टेन मे उनकी तुलना को नजरन्दाज कर दिया जाय तो इस राय में कुछ मचाई है। प्राउस्ट को महान उपन्यासकारो की पात के स्थान नहीं दिया जा सकता क्योकि उनमें सवसे अधिक महत्वपूर्ण गुण का अभाव है—उन्होने जीवन को इतनी गहराई के साथ नही पकडा है कि वे पात्रो को खुद अपना एक पूर्ण जीवन व्यतीत करने की शक्ति प्रदान कर सकें, ऐसा जीवन जिसमें आप उनसे कोई भी प्रश्न पूछ सकें और वे उत्तर देने पर वाध्य हो।

वॅल्स, लारेन्स और हक्सले का स्तर निम्नतर है। किप्स, मि पौली[1] तथा अन्य पात्र बहुत कुछ स्वय अपने रचयिता के आदर्श प्रतिरूप हैं और उनमें अगर कुछ करुणाभाव मिलता भी है तो वह खुद उनका अपना उतना नही जितना कि लेखक का है। हक्सले भी मुझे बहुत कुछ वैल्स के समान मालूम होते हैं। विचारो के प्रति उनमे भी वही जोश है जो उनकी पुस्तको को ऐसी शक्ति प्रदान करता है, जो उन्हे केवल अपने पात्रो से ही नही मिल सकती। इसी प्रकार विज्ञान मे भी वह वैसी ही दिलचस्पी रखते हैं और उन्ही की भाति सामयिक दुनिया के कठोर तथ्यो के बारे में किसी सन्तोषप्रद नतीजे पर पहुचने में समथ नही हो पाते। वास्तव में हक्सले की भाति अगर वैल्स भी ब्रामले ग्रामर स्कूल तथा साउथ केन्सिगटन के बजाय एटन तथा आक्सफोर्ड मे शिक्षा प्राप्त कर सकते तो, निस्सन्देह दोनो में कोई अन्तर न रहता।

लारेन्स को तो उपन्यासकार कहलाने का मानो अधिकार ही नही है। कारण कि *पुत्र और प्रेमी* तथा *इन्द्रधनुष* के शानदार प्रारम्भ के बाद उन्होने उपन्यास लेखन से पूर्णतया हाथ खीच लिया और उनके स्थान पर ऐसी कथा-कहानिया लिखने लगे, जो विचित्र, सुन्दर, और रहस्य-मय गद्य कविताए हैं। इनमे हाड-मास के पुरुपो और स्त्रियो का नही, बल्कि मनोदशाओ का चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ, *इन्द्रधनुष* की तुलना उसके बाद लिखी हुई अवाछनीय कृति *प्रेमासक्त स्त्रियों* से कीजिए। देखकर विश्वास नही होता कि बाद वाले उपन्यास की खोखली आकृतियो का पहले वाले उपन्यास की अनुराग-उमग भरी बहनो से कोई दूर का भी नाता हो सकता है। और *इन्द्रधनुष* में प्रेम और विवाह का विषय भी—लेविन और किट्टी के विवाह में तालसतोय ने उसी विपय के साथ जैसा निर्वाह किया है, उसके मुकाबले में कितना फीका और कितना जीवन-हीन प्रतीत होता है! *इन्द्रधनुष* लिखने के बाद लारेन्स के साथ कोई ऐसी बात हुई जिसने उनकी रचनात्मक क्षमता को पूर्णतया नष्ट कर दिया। आधुनिक उपन्यासकार के लिए लेखन का महत्त्व, मेरी समझ में, आदिम जगत के बारे में उनकी मसीहाई बकवास में नही बल्कि इस बात में है कि अग्रेजी देहात और अग्रेजी धरती के सौंदर्य की सराहना

करने वाला वह आखिरी लेखक था। किन्तु अग्रेजी देहात और अग्रेजी धरती के साथ गहरा लगाव रखना भी उसके लिए ही सम्भव है जो यह देखने की क्षमता रखता है कि यह धरती उन्मुक्त नही है, कि हर अग्रेज की विरासत को हृदयहीन और अज्ञान में डूबे जमीदारो का एक छोटा मा दल मनमाने तौर से विकृत तथा नष्ट कर रहा है। हार्डी मे यह सब देखने की क्षमता थी, लारेन्स में नही थी। इसलिए यद्यपि लारेन्स बेहतर अग्रेजी लिखते थे, फिर भी हार्डी का दिया हुआ अग्रेजी देहात का चित्र ही अधिक प्रभावशाली है।

अग्रेज उपन्यासकार का केन्द्रीय काम यह है कि मानव को उपन्यास मे वह फिर उसके अपने स्थान पर स्थापित करे, मानव का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे, सामयिक मानव के व्यक्तित्व की हर अवस्था को समझे तथा उसे कल्पनात्मक रूप में मूर्त्त करे। मानव की चेतना का विस्तार हो गया है, पूजीवादी समाज द्वारा लगाये गये बन्धनो-बाधाओ को तोडकर उन्मुक्त होने के लिए वह व्यग्र है, आधुनिक समाज की उन तमाम अद्भुत सुविधाओ का प्रयोग करने के लिए वह बेचैन है जो स्थल और वायु द्वारा द्रुत सचार के विकास ने, सिनेमा, बेतार के तार और टेलीविजन के विकास ने, कुत्सित और आत्मा को गिराने वाले श्रम से मुक्त घरो मे रहने की सम्भावना ने, प्रदान की है। ये सब चीजें अभी उसकी पहुच से बाहर है। केवल कुछ गिने-चुने लोग पूजीवादी दुनिया के मालिक, आधुनिक जीवन के इन अद्भुत आविष्कारो का उपयोग कर सकते हैं, और ये लोग इनका उपयोग करते हैं — मानव की आत्मा को और विकसित करने के लिए नही, बल्कि उसकापूर्ण विनाश करने के लिए। फिर भी करीब-करीब हर पुरुष और स्त्री में — चाहे वह भारतीय हो या चीनी, अग्रेज हो या फासीसी — यह चेतना वर्तमान है कि जीवन के सुख को अभी भी गहरा और विस्तृत बनाया जा सकता है। यह चेतना अमल का, एक नयी दुनिया बनाने के प्रयास का, रूप धारण कर रही है। मानव-मुक्ति का एक नया युग आरम्भ हो रहा है।

तब, यह पूछा जा सकता है कि, किस प्रकार के स्त्री-पुरुषो का हम अपनी पुस्तकों में वर्णन करें? कर्मरत मानवो को हम किस रूप में देखे?

नौ

समाजवादी यथार्थवाद

उपन्यास के सैद्धान्तिक धरातल पर विचार करते समय फीर्लिङग उसके महाकाव्यात्मक तथा ऐतिहासिक चरित्र पर हमेशा जोर देते थे। वह जोर देकर कहते थे कि मानव का पूर्ण चित्र तभी खीचा जा सकता है जबकि उसे कर्मरत दिखाया जाय। उपन्यासकार का काम केवल इतिवृत्त लिखना भर नही है—*टौम जोन्स* के एक भूमिकागत अध्याय में उन्होने लिखा—वल्कि इतिहास की रचना करना है। इसका अर्थ यह कि उसकी कृति "एक समाचार पत्र के सदृश्य नही होनी चाहिए जिसमें चाहे कोई समाचार हो या न हो, सदा की भाति समान सख्या में शब्द भरे होते हैं।" इतिवृत्त लेखक से भिन्न उपन्यासकार को "उन लेखको" की पद्धति से "काम लेना चाहिए, जिनका लक्ष्य देशो की क्रान्तियो का उद्घाटन करना होता है।" इसका अर्थ यह कि उसे निरे वर्णन या आत्मगत विश्लेषण से ही नही, वल्कि परिवर्तन से, कार्य-कारण सम्बध से, सकट और द्वन्द्व से सरोकार रखना चाहिए।

एक दूसरे अध्याय में, और भी अधिक नपे-तुले ढग से उपन्यासकार की भूमिका की व्याख्या करते हुए उन्होने बताया है कि उसमें "हमारी पहुच और ज्ञान के अन्तर्गत सभी चीजो के भीतर प्रवेश करने तथा उनकी मूल भिन्नताओ को पहचानने की" क्षमता होनी चाहिए। उपन्यासकार के इन गुणो को उन्होने "आविष्कार और परख" की सज्ञा दी है और साथ ही इस बात से इन्कार किया है कि आविष्कार का अर्थ केवल किसी घटना या परिस्थिति की रचना करने की क्षमता है। "आविष्कार का असली मतलब (और यही इसका शाब्दिक अर्थ

है) खोज या पता लगाना ही है, या यदि विस्तार से उसकी व्याख्या की जाय तो वह अपने चिन्तन की समस्त वस्तुओ के वास्तविक सार को तेजी से तथा समझदारी के साथ पकडना है। किन्तु यह, मेरी समझ में, तभी हो सकता है जबकि परखने की शक्ति भी साथ में हो। कारण कि बिना दो वस्तुओं के भेद की परख किए यह कहना कि उनके वास्तविक सार को खोज लिया गया है, मुझे कल्पनातीत प्रतीत होता है।"

यह बहुत ही बढिया सलाह है। उपन्यास लेखन के बारे में किसी भी समय, किसी भी लेखनी से निकली बढिया-से-बढिया सलाह से किसी भी मायने में कम नही है, और इसके रचयिता ने, *टौम जोन्स* के जिस अध्याय में यह बात कही है, उसके शीर्षक के रूप में अकारण ही यह नही लिखा है कि "उन लोगो के बारे में जो इस जैसे इतिहासो को अधिकार के साथ लिख सकते हैं, और उन लोगो के बारे में जो नही लिख सकते।" अधिकारप्राप्त उपन्यासकार या इतिहासकार—जैसा कि फील्डिग उसे मानते हैं—के अन्य गुणों में से एक है अध्ययनशीलता, और उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि होमर और मिल्टन—महाकाव्यो के रचयिता जिन्हे वे अपना गुरू स्वीकार करते हैं—"अपने समय के समूचे ज्ञान के अधिकारी थे।" अध्ययनशीलता के बाद जिस गुण की उपन्यासकार को आवश्यकता है वह है "सभी श्रेणियों और स्तरो के लोगो के साथ अपनत्व स्थापित करने" की क्षमता।

अपने इन कर्तव्यो के बारे में फील्डिग के मत को उपन्यासकार जब फिर से अपना लेगा, तो एक नये यथार्थवाद का जन्म होगा। हा, एक नये यथार्थवाद की स्थापना होगी। कारण इसका साफ है। आज, वस्तुओ के सारतत्व की खोज, उनके तात्विक भेदो को देख पाने की क्षमता तथा सभी स्तर के लोगो से अपनत्व स्थापित करने की क्षमता—इन सब के परिणामस्वरूप जो उपन्यास सामने आएगा वह फील्डिग या डिकेन्स की पुनरावृत्ति मात्र नही होगा। आज तात्विक भेदो के भीतर प्रवेश करने का अर्थ है उन अन्तर्विरोधों को खोल कर रखना जो मानव कृत्यो को उत्प्रेरित करते हैं। इनमें मानव के चरित्र में निहित आन्तरिक अन्तर्विरोध भी शामिल हैं और वे बाह्य असगतियां भी जिनके

साथ वे अविच्छिन्न रूप में जुडे हैं। आज हम सभी स्तरो के लोगों से तब तक अपनत्व नही स्थापित कर सकते, जब तक कि हम यह न समझें कि फील्डिग के समय से लोगो के पारस्परिक सम्बध किस प्रकार बदल चुके हैं।

इसमें सन्देह नही कि आधुनिक विज्ञान ने भारी परिमाण में मानव-चरित्र सम्बधी महत्वपूर्ण सामग्री का सचय किया है। खासतौर से वह सामग्री जो मानव के गहरे, उपचेतन, तत्वों से सम्बध रखती है, और जो हर उपन्यासकार के ध्यान देने योग्य है। किन्तु क्षण भर के लिए भी इसका यह अर्थ नही निकलता कि मनोवैज्ञानिक तथ्यो के इन सकलनो से, अपने-आप में, तमाम मानवीय क्रिया-कलापो या मानवीय विचारो और भावनाओ को समझा जा सकता है। फ्रायड, हैवलौक एलिस या पावलोव का समूचा कृतित्व भी इस बात की अनुमति नही देता कि उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक के हाथों में अपना काम सौंप कर सतोष कर ले। मार्क्सवादी निश्चय ही मनोवैज्ञानिक के इस दावे को नहीं मानते कि मानव-चिन्तन की तमाम प्रक्रियाओ या मानव मन के तमाम परिवर्तनो की कुजी मातृ-रति ग्रन्थि (ओडिपस काम्प्लैक्स) या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के शस्त्रागार में ग्रन्थियो की दुर्जेय सेना में से किसी अन्य में खोजी जा सकती है। इस तरह के निरे आत्मगत कारणों से इन प्रक्रियाओं और परिवर्तनो की व्याख्या नही की जा सकती। मानसिक जीवन के बारे में फ्रायड के निरे जैविकीय दृष्टि के द्वारा, या पावलोव और प्रतिक्षेपवादियो के निरे यान्त्रिक दृष्टि के द्वारा मानव को—जैसा कि फील्डिग चाहते थे—उसके व्यक्तिगत "क्रान्तियो" की पृष्ठभूमि में चित्रित नही किया जा सकता, मानव व्यक्तित्व की कल्पनात्मक पुन रचना के लिए उसके भीतर सच्चे मायनों में नही पैठा जा सकता। निस्सन्देह, आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मानव-सम्बधी हमारे ज्ञान में भारी वृद्धि की है, और उनकी देन से इनकार करके आज का उपन्यासकार अपने अज्ञान का ही नही, बल्कि मूर्खता का भी परिचय देगा। किन्तु वे व्यक्ति को समग्र रूप में—एक सामाजिक प्राणि के रूप में—देखने में पूर्णतया असमर्थ रहे हैं। उन्होने जीवन के बारे में उस

झूठे दृष्टिकोण के लिए आधार प्रदान किया है जिसके कारण प्राउस्ट और जॉयस में कला का एकमात्र लक्ष्य मानव-व्यक्तित्व की रचना करने के बजाय मानव व्यक्तित्व का विघटन करना बन गया।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण — बावजूद इस बात के कि इसके बल पर मानव-व्यक्तित्व की गुप्त गहराइयों को प्रतिभाशाली तथा साहसपूर्ण ढंग से कुरेदा-टटोला गया है — कभी यह नही समझ सका कि कोई व्यक्ति सामाजिक समग्रता का केवल एक अंश मात्र है, और यह कि इस समग्रता के अधिनियम, सक्षेत्र-काच (प्रिज्म) में से गुजरनेवाली प्रकाश-किरणो की भांति व्यक्ति के मन रूपी यंत्र में विघटित और वक्रित होकर, हर व्यक्ति की प्रकृति को बदलते और नियंत्रित करते हैं। आज मानव हमारी समाज-व्यवस्था के भरभरा कर ढह जाने के साथ उत्पन्न होने वाली बाह्य वस्तुगत विभीषिकाओ के खिलाफ, फासिज्म के खिलाफ, युद्ध के खिलाफ, बेकारी के और कृषि के ह्रास के खिलाफ, मशीन के प्रभुत्व के खिलाफ, लडने पर बाध्य है। साथ ही उसे अपने मास्तिष्क के अन्दर इन सब चीजो के मनोगत प्रतिबिम्ब के खिलाफ भी लडना है। उसे लडना है दुनिया को बदलने के लिए, सभ्यता को बचाने के लिए। और साथ ही उसे मानव-आत्मा में पूंजीवादी अराजकता को खत्म करने के लिए भी लडना है।

इस दोहरे संघर्ष में ही, जिसमें प्रत्येक पक्ष बारी-बारी से एक-दूसरे को प्रभावित करता और एक-दूसरे से प्रभावित होता है — अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी यथार्थवाद के बीच के पुराने तथा कृत्रिम विभाजन का अन्त होगा। तब उस पुराने यथातथ्यवादी यथार्थ का लेश नही रहेगा, अन्तहीन विश्लेषण तथा अन्तश्चेतना के उपन्यास नही लिखे जाएंगे, बल्कि एक नये यथार्थवाद का उदय होगा जिसमे इन दोनों के बीच समुचित सम्बंध तथा तारतम्य रहेगा। आधुनिक यथार्थवादी, जोला और मोपासा के उत्तराधिकारी, निश्चय ही इस बात का अनुभव करते हैं कि उनके गुरुओ की पद्धति अब काम नहीं देती, वह अपर्याप्त है। किन्तु द्वन्द्वात्मकता के अभाव में, एक ऐसे दर्शन के अभाव में जो उन्हे दुनिया

को देखने और समझने में सचमुच सहायता देता, वे गलत रास्ते पर चल पड़े और उस यथातथ्यवाद को टेक देने के लिए उन्होने चरचराते तथा कृत्रिम प्रतीकवाद का सहारा लिया। जूल्स रोमैं[1] तथा सिलीन[2] के उन अन्तहीन, शक्तिशाली, किन्तु असन्तोषजनक उपन्यासो की यही सब से गम्भीर कमजोरी है।

इन दोनो में तालमेल कैसे बैठाया जाए, बुर्जुआ यथार्थवाद के भीतर इस पुराने विभाजन को कैसे तोड़ा जाए ? इसके लिए सर्वप्रथम ऐतिहासिक दृष्टिकोण को पुनर्स्थापित करना होगा, जो कि अंग्रेजी क्लासिकी उपन्यास का आधार था। यहा इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि इसका अर्थ केवल कथानक तथा वर्णन की कमी को पूरा करना ही नही है, कारण कि हमें जीवित मानव को लेकर चलना है, न कि केवल उन बाह्य परिस्थितियो को जिनमें कि वह रहता है। कतिपय समाजवादी उपन्यासकारो ने यही गलती की है। वे अपनी समूची प्रतिभा और शक्ति किसी एक हड़ताल, सामाजिक आन्दोलन, समाजवाद के निर्माण, क्रान्ति या गृह-युद्ध का चित्रण करने में खर्च कर देते हैं और यह नही सोचते कि सर्वोच्च महत्व की चीज सामाजिक पृष्ठभूमि नही, बल्कि उस सामाजिक पृष्ठभूमि में स्वय अपना पूर्ण विकास प्राप्त करने वाला मानव है। महाकाव्य का मानव एक ऐसा मानव होना चाहिए जिसमें स्वय उसके तथा उसकी व्यावहारिक गतिविधि के क्षेत्र के बीच कोई विभाजन नहीं होता। वह जीता है और जीवन को बदलता है। मानव आत्म-सृष्टि करता है।

न्याय के नाते हमें यह स्वीकार करना चाहिए — और ऐसा करना अत्यत सुसगत आत्म-आलोचना करना होगा — कि न तो सोवियत उपन्यास और न पश्चिमी देशों के क्रान्तिकारी लेखकों के उपन्यास, गिने-चुने अपवादो को छोड़कर, अभी तक इसे पूर्णतया व्यक्त कर पाए हैं। ऐसा न कर पाने के उचित-से-उचित कारण बताए जा सकते हैं। सबसे पहले खुद घटनाओं को ही लीजिए — रूसी गृह-युद्ध, समाजवादी उद्योग का निर्माण, किसानों के जीवन में क्रान्ति, शोषण के खिलाफ सघर्ष और फासिज्म से मजदूर वर्ग की रक्षा — ये सब चीजें इतनी

प्रभावशाली तथा वीरतापूर्ण हैं कि लेखक को लगता है कि उनको केवल लेखनी-बद्ध कर देने से ही जबरदस्त प्रभाव पडेगा। निस्सदेह इसका भी बहुधा भारी अनुभूतिमूलक महत्त्व होता है, किन्तु यह अनुभूतिमूलक महत्त्व केवल प्रथम कोटि की पत्रकारिता के क्षेत्र की वस्तु है। इसके द्वारा लेखक मानव के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि नही करते, अथवा हमारी चेतना और सवेदनशीलता को वस्तुत विस्तृत नही बनाते।

ऐतिहासिक घटना—ऐंगेल्स ने अपने उस पत्र में लिखा था जिसे में इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में उद्धृत कर चुका हू—और कुछ भले ही हो किन्तु १+१=२ का सीधा जोड, कार्य और कारण का एक सीधा सम्बध, नही है। "इतिहास इस तरह अपना निर्माण करता है कि अन्तिम परिणाम हमेशा अनेक व्यक्तिगत इच्छा-शक्तियो के द्वन्द्व से पैदा होता है, और इन इच्छा-शक्तियो में से भी प्रत्येक जीवन की अनगिनत विशेष परिस्थितियों के द्वारा निर्मित होती है। इस प्रकार परस्पर काट करती अनगिनत ताकतें, शक्तियो के समानान्तर चतुर्भुजों की अनन्त शृ खलाए, एक परिणाम को, ऐतिहासिक घटना को जन्म देती हैं।"[1]

ऐंगेल्स और मार्क्स, दोनों ही शैक्सपीयर को ऐसा एकमात्र रचयिता मानते थे जिसने मानव व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने की समस्या को सर्वोच्च ढग से हल किया था। शैक्सपीयर के पात्र मार्क्सवादी लेखको के लिए इस बात का आदर्श प्रस्तुत करते हैं कि एक ही साथ एक टाइप तथा एक व्यक्ति के रूप में, समुदाय के प्रतिनिधि तथा एक अलग व्यक्तित्व के रूप में, मानव का चित्रण कैसे किया जाना चाहिए। ऐंगेल्स ने अपने दिलचस्प पत्रों में, जो कि उन्होंने लसाल को उसके ऐतिहासिक नाटक *फ्रान्ज वौन सिकिन्गेन* की आलोचना करते हुए लिखे थे, बताया है कि इस नाटक का मुख्य दोष यह है कि लसाल ने शैक्सपीयर के "यथार्थवाद" की जगह शिलर की नाटक-पद्धति को अपनाना अधिक पसद किया है। ऐंगेल्स ने लिखा है "प्रचलित मूर्खतापूर्ण व्यक्तिवाद को रद्द करके तुमने बहुत ही ठीक किया। तुच्छ दार्शनिकता बघारने के सिवा उसमें और कुछ नही है, वह महान परम्परा के उत्तराधिकारी साहित्य के ह्रास

का सुनिश्चित लक्षण है। फिर भी मेरी समझ में, किसी व्यक्तित्व की विशेषता केवल इसी बात से नही प्रकट होती कि वह क्या करता है, बल्कि इससे भी प्रकट होती है कि वह कार्य कैसे करता है, और इस पहलू से—मुझे लगता है कि—तुम्हारे नाटक के सैद्धान्तिक विषय को क्षति नही पहुचती यदि विविध पात्रो का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से, उनकी भिन्नता और उनके पारस्परिक विरोध को दिखाते हुए, किया गया होता। हमारे काल में *पूर्वजों* का चरित्र-चित्रण पहले ही अपर्याप्त है और इस दिशा में, मेरी समझ में, नाटक के विकास के इतिहास में शैक्सपीयर के महत्व पर और अधिक ध्यान देना अच्छा होगा।"[1]

शैक्सपीयर के पात्र-निर्वाह के बारे में हैजलिट के मत के साथ मार्क्स और ऐंगेल्स अवश्य ही सहमत होते कि उसके "तत्व निरन्तर सघटित और विघटित होते रहते हैं। अन्य मूल पिण्डो के सम्पर्क में आने पर उनके प्रति आकर्षण या विकर्षण की एक के बाद दूसरी क्रिया के कारण सम्पूर्ण पिण्ड का प्रत्येक कण उबलता-उफनता रहता है। जब तक प्रयोग जारी है, हम उसके नतीजो को भाप नही पाते, यह नही जान पाते कि अपनी नयी परिस्थितियो में पात्र कौन सी करवट लेगा।" अप्रत्याशित के ठीक इसी गुण की ओर, जो एक साथ ऐतिहासिक घटना की आन्तरिक सगति से तथा खुद पात्र से भी मेल खाता हो, ऐंगेल्स का इशारा था जब उन्होने यह लिखा था कि व्यक्तिगत इच्छा-शक्तियो के द्वन्द्व से जो चीज पैदा होती है वह एक "ऐसी चीज होती है जिसकी किसी ने भी इच्छा नही की थी।"

यथार्थवाद के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के सम्बध में अब तक जो कुछ मैंने कहा है उससे यह सहज ही समझ में आ जायेगा कि इसका उस प्रचलित भ्रम से जरा भी वास्ता नही है कि क्रान्तिकारी या सर्वहारा साहित्य भोंडे ढग से छिपाकर पेश किये गये राजनीतिक प्रचार से अधिक कुछ नही होता। मार्क्स और ऐंगेल्स का यह सुस्पष्ट मत था कि कोई भी लेखक अपने समय के वर्ग-सघर्षों से बेगाना बन कर नही लिख सकता, और यह कि सभी लेखक—जाने में या अनजाने में—इन सघर्षों में कोई न कोई पक्ष लेते और उसे अपनी कृतियो में व्यक्त करते हैं। यह

बात विश्व साहित्य के महान सृजनात्मक कालों में खासतौर से नजर आती है। किन्तु साहित्य के उस रूप को, जिसमें लेखक मानवों के जीवित कृत्यों की जगह अपने विचारों को ठूसता है, उन्होंने सदा ही अत्यन्त निन्दनीय माना है। १८५१ में ही, *न्यू यार्क ट्रिब्यून* में एंगेल्स ने अपने एक लेख में १८३० से लेकर १८४८ तक जर्मनी के साहित्यिक आन्दोलन की अत्यंत कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने लिखा था "इस काल के प्राय सभी लेखक एक प्रकार के भोंडे विधानवाद का, या इससे भी ज्यादा भोंडे गणतंत्रवाद का प्रचार करते थे। उनकी, और खासतौर से घटिया किस्म के साहित्यिकों की, अपनी कृतियों में कौशल के अभाव को छिपाने के लिए ऐसे राजनीतिक संकेतों का सहारा लेने की आदत बनती जा रही थी जो बरबस ध्यान खींचने वाले हों। कविता, उपन्यास, आलोचनाएं, नाटक, हर साहित्यिक कृति उस तथाकथित "उद्देश्य-परकता" में—अर्थात सरकार-विरोधी भावना के कम-व-बेश दक्ष प्रदर्शन में—डूबी हुई थी।"[1]

इसी प्रकार बालजाक पर मिस हार्कनेस को करीब चालीस साल बाद लिखे गये अपने पत्र में उन्होंने और भी साफ शब्दों में अपना मत व्यक्त किया। "यह बिल्कुल न समझना," उन्होंने लिखा . "कि मैं तुम्हें लेखक के सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों को गौरवान्वित करने के लिए एक नकली समाजवादी उपन्यास—एक 'टेन्डेन्ज रोमन'[2] मार्का उपन्यास, जैसा कि हम जर्मन कहते हैं—न लिखने के लिए दोष देना चाहता हूं। नहीं, यह मेरा तनिक भी अभिप्राय नहीं है। लेखक के विचार जितना अधिक प्रच्छन्न रहें, कलाकृति के लिए यह उतना ही अच्छा है। जिस यथार्थवाद की ओर मेरा संकेत है, वह तो लेखक के विचारों के बावजूद भी फूट पड़ सकता है।"[3] मार्क्स और एंगेल्स जिस चीज पर वास्तव में जोर देते थे वह यह कि कलाकृति लेखक के विश्व दृष्टिकोण के अनुकूल होनी चाहिए, कारण कि केवल वह दृष्टिकोण ही उसे कलात्मक एकजूटता प्रदान कर सकता है। किन्तु लेखक को कभी भी अपने विचारों को थोपना न चाहिए। यह न मालूम हो कि दृष्टिकोण का प्रचार किया जा रहा है, परिस्थितियों और खुद पात्रों के द्वारा वह प्रकृत

रूप में व्यक्त हो। यही सच्ची उद्देश्यपरकता है, ऐसी उद्देश्यपरकता जो सभी महान कलाकृतियो को सारगर्भित बनाती है और जिसे—जैसा कि ऐंगेल्स ने एक अन्य भावी समाजवादी उपन्यास-लेखिका, कार्ल की मा मिन्ना कौट्स्की को बताया था—एस्काइलस और अरिस्तोफेन्स में, तथा दान्ते और सर्वेण्टीज में देखा जा सकता है, समसामयिक रूसी और नौर्वे के उपन्यासकारो में वह वर्तमान है जिन्होने "शानदार उपन्यासो की रचना की है, और ये उपन्यास सब-के-सब उद्देश्यपरक हैं। किन्तु मेरी राय में उद्देश्यपरकता का उदय बिना उस पर विशेष जोर दिये परिस्थिति तथा कर्म में से अपने-आप होना चाहिए, और यह कि लेखक इस बात के लिए बाध्य नही है कि जिन सामाजिक द्वन्द्वो का वह चित्रण करता है, उनका कोई बनाबनाया ऐतिहासिक हल भी वह पाठको को दे।"[1]

इस विचार को इसी पत्र में और आगे विकसित करते हुए उन्होने बताया कि आधुनिक परिस्थितियो में लेखक के पाठक अधिकाशत बुर्जुआ वर्ग से निकलेंगे, और यह कि "इसलिए मेरी राय में वास्तविक सामाजिक सम्बधो का वर्णन कर, उनके बारे में सापेक्ष भ्रमो को नष्ट कर, बुर्जुआ जगत की आशावादिता को उलट-पुलट कर, वर्तमान समाज व्यवस्था की चिरन्तनता में सन्देह के बीज बोकर, समाजवादी उद्देश्यपरक उपन्यास अपना ध्येय पूर्णतया प्राप्त कर लेता है, यद्यपि ऐसा करते समय लेखक कोई सुनिश्चित हल नही प्रस्तुत करता, और कभी-कभी तो इस या उस पक्ष का समर्थन तक नही करता।"[2]

लेखक का काम उपदेश झाडना नही, बल्कि जीवन का एक वास्तविक, ऐतिहासिक, चित्र प्रस्तुत करना है। पुरुषो और स्त्रियो की जगह कठपुतलियों को खडा करना, हाड और मास की जगह लगे-बधे विचारो से काम लेना, सन्देहो, पुराने नाते-रिश्तो, रीति-रिवाजों और लगावो से ग्रस्त वास्तविक लोगों की जगह "नायको" तथा "खल-नायको" की बारात सजाना अत्यत सुलभ है, किन्तु ऐसा करना उपन्यास लिखना नही है। सभाषण बेकार हैं यदि हम जीवन की उन तमाम प्रक्रियाओ को नही समझते जो कि सभाषणों के पीछे छिपी हैं। निश्चय ही पात्रों के अपने

राजनीतिक विचार हो सकते हैं, और होने चाहिए भी, किन्तु शर्त यह है कि वे पात्रो के अपने ही विचार हों, लेखक के विचार नही। कभी-कभी यह भी हो सकता है कि किसी पात्र के विचारों में और लेखक के विचारो में कोई अन्तर न हो, किन्तु ऐसी स्थिति में भी उन्हें पात्र की ही आवाज में प्रकट होना चाहिए। इससे यह परिणाम भी निकलता है कि उस पात्र की अपनी निजी आवाज, उसका अपना व्यक्तिगत इतिहास होना चाहिए।

क्रान्तिकारी लेखक पार्टी लेखक होता है, उसका दृष्टिकोण उस वर्ग का दृष्टिकोण होता है जो एक नयी समाज व्यवस्था के निर्माण के लिए सघर्ष कर रहा है, इसलिए यह और भी जरूरी है कि उसकी कल्पना अधिकाधिक विस्तार में उड़ानें भर सकती हो, उसकी रचनात्मक शक्ति अत्यत पैनी हो। वह अपने दलगत उद्देश्य को पूरा करता है एक नये साहित्य की रचना में योग देकर—ऐसे साहित्य की रचना में योग देकर जो ह्रासकालीन बुर्जुआ वर्ग के अराजकतापूर्ण व्यक्तिवाद से मुक्त हो। यह काम वह आज के किसी एक या दूसरे सवाल पर पार्टी के नारो को उद्घृत करके नहीं, बल्कि अपने दृष्टिकोण की माग के अनुसार दुनिया का वास्तविक चित्र पेश करके ही कर सकता है। वह उस चित्र को तब तक सच्चा नही बना सकता जब तक कि वह स्वय एक सच्चा मार्क्सवादी, परिष्कृत दार्शनिक दृष्टिकोण से लैस एक द्वन्द्वशास्त्री नही बनता। अथवा, यदि फील्डिंग के शब्दों में कहना चाहें तो, जब तक कि वह अपने समय के ज्ञान में पाडित्य हासिल करने का वास्तविक प्रयास नही करता।

कलाकार की इस व्याख्या का अर्थ यह है कि जीवन सम्बधी उसके ज्ञान-क्षेत्र से कुछ भी बहिष्कृत नहीं है। सर्वहारा साहित्य[1] अभी बहुत ही अल्प आयु है, सोवियत सघ से बाहर उसकी आयु दस साल से भी कम है, और उस पर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि वह—कम-से-कम पूजीवादी देशों में—केवल खास किस्म के लोगों का, और इन लोगों के भी कुछ गिने-चुने पहलुओं का, अधिकतर चित्रण करता है। हड़ताल के नेता, पूजीवादी "बौस," नये विश्वास की खोज करते बुद्धि-जीवी—और बस, नये लेखक इससे आगे जाने का साहस नहीं करते,

भी वे सुगठित, सुडौल, चलते-फिरते मानवो की जगह सपाट आकृतिया अधिक लगते हैं। मालरो और वेट्स के पात्र वहुधा कम्युनिस्टो के रूप में तो विश्वसनीय लगते हैं, किन्तु मानवो के रूप में नही। पेशेवर क्रान्ति-कारी के (उस व्यक्ति के जिसका समूचा जीवन क्रान्तिकारी सगठन और नेतृत्व के लिए अर्पित है) मनोभाव ऐसे नही होते जैसे कि मालरो और वेट्स अपने नायको में दिखाते हैं।

निस्सदेह, इस सिलसिले में, यह याद रखना आवश्यक है कि किसी क्रान्तिकारी ध्येय की सेवा में जीवन अर्पण करने वाले व्यक्ति के रूप में क्रान्तिकारी का चरित्र, एक ऐसा नया चरित्र है जिसे पूजीवादी समाज ने खास तौर से उन्नीसवी शताब्दी में पैदा किया है। वह विक्टर ह्यूगो की कृतियो में प्रकट होता है, फ्लौवर्ट भी उसके अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु उसे उसके निकृष्टतम रूप में—१८४८ के निम्न मध्य-वर्गीय राजनीतिज्ञ के रूप में देखता है, एक ऐसे प्रतिनिधि चरित्र के रूप में जिसका, मार्क्स और ऐंगेल्स ने, १८४८ की क्रान्ति-सम्बधी अपनी कृतियो में घातक सचाई के साथ विश्लेषण किया था। और विचित्र बात यह कि मेरेडिथ का ध्यान भी उसकी ओर गया और उसने इटली के क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी *विट्टोरिया* तथा *सान्द्रा बेलिनी* के रूप में उसका चित्र खीचने की चेष्टा की।

दोस्तोवस्की और तुर्गनेव ने, जिन्हें रूस के अराजकवादी आन्दोलन के प्रति एकवारगी आकर्षण भी हुआ और घृणा भी, बाकुनिन के मित्र और कुटिल प्रतिभा नेचाईव के विचित्र घिनौने चरित्र को अपने उपन्यास *संत्रस्त* और *धुआ* में उठाया और उसकी छवि के द्वारा रूस के समूचे प्रगतिशील आन्दोलन को, अनुचित ढग से, परिहास का लक्ष्य बनाने की चेष्टा की। इसके काफी समय बाद, हमारे अपने काल में, कोनराद ने भी अपने उपन्यास *पश्चिम की नजरों में* नेचाईव को फिर उसी उद्देश्य से उठाया, हालाकि कोनराद का राजनीतिक लक्ष्य उसके महानतर अग्रजो से भिन्न था।

इन सभी उपन्यासकारो में एक विशेषता समान रूप में मिलती है। वह यह कि इन्होंने अपने क्रान्तिकारियों को मध्यम वर्ग में से, विगत

शताब्दी के राष्ट्रवादी, लोकतान्त्रिक या अराजकवादी आन्दोलनो में से लिया है। आलोचनात्मक दृष्टि से वे उसकी छवि का निर्माण करते हैं —समाज के विरुद्ध राजनीतिक विद्रोह में जुटे इस व्यक्ति के प्रति कभी घृणा का अनुभव करते हुए, कभी उसकी कुछ विशेषताओ के प्रति आकर्षित होते हुए। जब हम उनके बारे मे सोचते हैं तो यह स्वीकार करना पडता है कि मार्क्स और ऐंगेल्स ने—जो स्वय क्रान्तिकारी थे—इस प्रकार के क्रान्तिकारी पर कही अधिक सख्त किन्तु सन्तोषजनक आक्रमण किया था, और उनका वह आक्रमण अधिक सन्तोषजनक इसलिए था कि उन्होने हमारे आज के वास्तविक क्रान्तिकारी के साथ, पूजीवादी समाज के विरुद्ध लडते हुए मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी के साथ उसके सम्बध को पहचाना था। उनकी आलोचना नकारात्मक नही थी, वह ऐसी दो विभूतियो की सक्रिय आलोचना थी जो मानवता को, उसके इतिहास के सबसे महान कार्य को सम्पन्न करने के योग्य बनाने के लिए अस्त्रो से लैस कर रहे थे।

इन तमाम बातो के बावजूद मजदूर वर्ग का क्रान्तिकारी उन्नीसवी शताब्दी के साहित्य में फिर भी प्रकट हुआ, और शान के साथ प्रकट हुआ। मार्क रुदरफोर्ड के उपन्यास *टैनर्स लेन में क्रान्ति* का नायक जकारिया कोलमैन, छापेखाने का मजदूर, इतना जानदार है कि उसे अमर कहा जा सकता है। खुद उपन्यास का जहा तक सम्बध है, उसमें भारी दोष हैं—सच तो यह है कि उसमें लगभग सभी सम्भव दोष मौजूद हैं—किन्तु उसके चरित्र-चित्रण—जकारिया, ज्ाँ कैलो, दोनो पोलीनो के चरित्र—की सच्चाई और प्रबल शक्ति, तथा उसका गम्भीर गद्य जो इन जोशभरे और मुसीबतों में फसे लोकतन्त्रवादियो को इतनी पूर्णता के साथ व्यक्त करता है, इस उपन्यास को जीवित रखेंगे।

जकारिया "स्वभाव मे कवि था, मूलत कवि, क्योकि वह हर उस चीज मे प्यार करता था जो उसे घिसी पिटी बातो से ऊपर उठाती थी। ईसाइयाह, मिल्टन, तूफान, क्रान्ति, अदम्य अनुराग—ये सब उसकी आत्मा के सखा थे।" उसकी कल्पना की कविता और उसके जीवन के गद्य के बीच उसकी जिन्दगी में कोई खाई नही थी। गरीबी, पहला

दुःखद विवाह, उत्पीडन की कटुता, कारावास, धार्मिक सशय—जकारिया में ये सब जीवन को बदलने की एक अदम्य इच्छा-शक्ति का, उसके क्रान्ति-गीत का रूप धारण करते हैं, पौलीन के साथ उसके दूसरे विवाह में पल भर के लिए जिसकी सामरिक परितुष्टि होती है।

जीवन में गद्य और कविता का यह मिलन उसे अपने प्रति सच्चा रहने की प्रेरणा देता है, जिसमे कि अपने जीवन के अन्त में यह वृद्ध लोकतन्त्रवादी टैनर लेन के उग्र लौह मजदूर से यह कहने की ताव रखता है "मैं विद्रोह में विश्वास करता हू विद्रोह न्याय में मानव के विश्वास को सुदृढ बनाता है विद्रोह दूसरो के विश्वास को भी दृढ बनाता है। जब गरीबो का एक दल मिल बैठ कर घोपणा करता है कि स्थिति यहा तक बिगड चुकी है कि या तो वे अपने दुश्मनो का काम तमाम कर देंगे, या खुद खत्म हो जायेंगे, तब दुनिया सोचने के लिए बाध्य होती है कि आखिर न्याय और अन्याय में कोई फर्क होना ही चाहिए !"

लौंग एकर या शू लेन छापेखाने का क्रान्तिकारी मजदूर आज अपने-आप को दूसरे ढग से व्यक्त करेगा, किन्तु जकारिया कोलमैन तथा उस जैसे अन्य हजारो मजदूर अगर पहले रास्ता न बना गये होते तो उसका यह रूप न होता। कोलमैन की सादगी, उसका यह निश्छल विश्वास कि बुराई पर भलाई की विजय होकर रहेगी, कभी-कभी हमे बडे दयनीय मालूम होते हैं जब हम देखते हैं कि कितनी आसानी से उनका दुरुपयोग किया जाता है, किन्तु यह सब होने पर भी उसकी शक्ति, उसकी काव्य-मयता, अपने वर्ग में उसका विश्वास इस समय भी एक ऐसा स्रोत बना हुआ है, जिससे आज का क्रान्तिकारी शक्ति सचय कर सकता है। उपन्यास के समूचे दौरान में कोलमैन का विश्वास कभी नही बदलता, किन्तु वह स्वय बदलता है, वह जीता है, मात खाता है, लेकिन आत्म-समर्पण नही करता, और जीवन के साथ उसके सघर्ष में उसके चरित्र का विकास होता है।

किन्तु रुदरफोर्ड की कृति से भी महान एक अन्य कृति वह है जिसे हम इस शताब्दी का सच्चा क्रान्तिकारी महाकाव्य कह सकते हैं। निश्चय ही यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, इसका विषय स्पेन के उत्पीडिको के

विरुद्ध फ्लेमिश जनता का मुक्ति युद्ध है और अनेक स्थलो पर तो यह लोकसाहित्य के निकट अधिक मालूम होता है, इतिहास के कम। इस उपन्यास का नाम है *तिल उलेनस्पाइगल* और इसका लेखक चार्ल्स द कोस्टर भली भाति जानता था कि उसका उपन्यास हमारे काल के लिए भी एक क्रान्तिकारी उपन्यास है। अपनी भूमिका में, जिसे स्वर्गीय सर एडमण्ड गौस ने अंग्रेज पाठको की नफासत का ध्यान रख कर अंग्रेजी सस्करण से निकाल दिया, चार्ल्स द कोस्टर अपने उल्लूचश्म (आउल ग्लास) के आधुनिक उपयोगों पर जोर देते हैं और यह कहने में जरा भी नही हिचकिचाते कि हमारे अपने समय में भी उसी थैली के चट्टे-वट्टे—अन्य स्पेनी आक्रमणकारी और उत्पीडक—मौजूद हैं जिनसे हमें लडना है और जिन्हें परास्त करना है। यहा भी क्रान्ति की कविता का जीवन के गद्य के साथ मेल दिखाई देता है, किन्तु इस अन्तर के साथ कि कोस्टर की कविता जकारिया कोलमैन के समान पुराने टेस्टामेंट से नही, वल्कि फ्लैण्ड्र्स की लोक गाथाओ से अनुप्राणित थी।

कोस्टर ने सच्चे अर्थ में केवल एक आधुनिक महाकाव्य की ही रचना नही की, वल्कि एक ऐसी चेतना और मनोवैज्ञानिक समझ का भी परिचय दिया जो उनके समय के लिए कहीं आगे वढी हुई थी, इतनी आगे कि फ्रायड के हमारे शिष्यों में से एक भी उस तक नहीं पहुच सका। और इसका भी ठोस कारण था। उनकी मनोवैज्ञानिक समझ जीवन के निरीक्षण का परिणाम थी, उन्होंने उसे पाठ्य-पुस्तकों से उधार नहीं लिया था। यह पुस्तक, जिसमें धरती और आम लोगो के जीवन की कविता, अनगढ स्वस्थ हास्य, हार्दिक सवेदनशीलता, सच्चा प्रेम, साहस और भक्ति का धनिकों और सत्ताधारियो के प्रति घृणा तथा ढोंग और धार्मिक पाखण्ड से नफरत के साथ सम्मिश्रण है, उत्पीडन के विरुद्ध मानव के विद्रोह की आत्मा को—उसके सार-तत्व को—व्यक्त करती है। यह एक विश्व-पुस्तक है। कब्र को तोड कर छीकता हुआ और वालो से रेत को झाडता हुआ उठ खडा होने वाला तिल उस नयी दुनिया की प्राप्ति के निमित्त लडने वाले साधारण मानव के पुन जी उठने का प्रतीक है, जिसमें मानव के दोहरे मूल्य न होंगे, वल्कि केवल वह

स्वय होगा—उन्मुक्त और जीवन का स्वामी। उसे कब्र में से उठता देख नगरपति तथा मुखिया के—पाखण्डियो की दुनिया के इन मनहूस प्रतिनिधियो के—होश गुम हो जाते हैं, पादरी को वह गले से दबोच लेता है जिसने भिखारी उलेनस्पाइगल की मृत्यु पर भगवान का गुणगान किया था।

"'यम के दूत,' तिल ने कहा . 'तुमने मुझ सोये हुए को जीते-जी धरती में दफना दिया। नेली कहा है ? क्या तुम उसे भी कही दफना आए हो ? आखिर तुमने अपने को समझा क्या है ?'

"पादरी चिल्ला उठा

"'महा भिखारी फिर इस दुनिया में लौट आया। ऐ खुदा, मुझ पर रहम कर!'

"और वह वहा से भाग गया—जैसे शिकारी कुत्तो को देख कर हिरण भागता है।

"नेली उलेनस्पाइगल के निकट आ गई।

"'मुझे चुम्बन दो, मेरी रानी,' उसने कहा 'क्या कोई,' वह बोला, 'मा फ्लैण्डर्स के हृदय नेली और उसकी आत्मा उलेनस्पाइगल को दफना सकता है ? वह भी, सो तो सकती है, मर नही सकती। नही, कभी नही। आओ नेली, चली आओ।'

"और वह उसे साथ लेकर आगे बढ चला। वह अपना छठा गीत गा रहा था, किन्तु यह कोई नही जानता कि उसने अपना अन्तिम—सब से अन्तिम—गीत कहा गया।"

वह अन्तिम गीत अभी गाया नही गया है, किन्तु हम जानते हैं कि उसका सार क्या है।

"और दलदल के अगिया बैतालो ने कहा

"'हम आग हैं, अब तक जितना आसू बहाया गया है, जनता ने जितनी मुसीबतें झेली हैं, हम उसका प्रतिशोध हैं, हम प्रतिशोध हैं उन श्रीमन्तो के, जिन्होने अपनी जमीन पर मानव-जीवो का शिकार खेला है, हम निष्फल युद्धो के, कैदखानो में बहे खून के, जिंदा जलाए गए पुरुषो और जीवित दफनाए गए स्त्रियो और बच्चो के प्रतिशोध हैं, हम बेडियो

में जकडे हुए और रक्त रिसते अतीत का प्रतिशोध हैं। हम आग हैं, हम उनकी आत्माए हैं जो अब इस ससार में नही रहे।'

"इन शब्दों के साथ ही सातो (दुर्व्यसन) लकडी के बुत बन गए, उलेनस्पाइगल ने उनमें आग लगा दी, वे जल कर राख हो गए, खून की एक नदी वह चली और राख में से सात अन्य आकार प्रकट हुए। पहले ने कहा

"'मेरा नाम था गर्व, महान आत्मा मुझे कहा जाता है।'

"इस ढग से अन्य ने भी अपना परिचय दिया और उलेनस्पाइगल तथा नेली ने देखा कि जहा लिप्सा थी वहां अब किफायतश्यारी मौजूद है, गुस्से का स्थान प्रफुल्लता ने ले लिया है, चटोर-पेटूपन की जगह सहज भूख का, ईर्षा की जगह होड का और कहिली की जगह कवियो और दृष्टाओं के उल्लास का उदय हुआ है। और अपनी बकरी पर बैठी वासना ने रूप धारण कर लिया है एक सुन्दर स्त्री का जिसका नाम था प्रेम।

"और दलदल के अगिया-बैताल घेरा बनाकर उनके चारो ओर खुशी से नाचने लगे।

"तभी उलेनस्पाइगल तथा नेली ने हजारों अदृश पुरुषो और स्त्रियो की आवाजें सुनी, सगीतमय और हसती हुई आवाजें, जो खडतालो की सी ध्वनि में गा रही थी

"जब जल-थल पर राज करेंगे,
ये रूप बदलने वाले सात।
लोगों, लखो निडर हो नभ को
स्वर्णिम युग का हुआ प्रभात।"

ये दोनो पुस्तकें, *टैनर्स लेन में क्रान्ति* और *उलेनस्पाइगल*, इसलिए इतनी शक्तिशाली और प्राणवान हैं कि वे राष्ट्रीय भावना में, इग्लैण्ड और बेल्जियम की जनता की भावना में, पगी हैं। कोलमैन इग्लैंड के गरीब लोगो के तमाम सघर्षों का मूर्त्त रूप है, सीधे लड्डाइटो से उसका नाता है, सत्रहवी शताब्दी के प्यूरिटनो से लेकर अट्ठारहवीं

शताब्दी के वेस्लेयान के खान-मजदूरो[1] तथा शुरू के चार्टिस्टो तक की मजिल उसने तय की है। वह एक ऐसा प्रोटेस्टेंट है जिसे हमारे शासकों ने कभी स्वीकार नही किया, श्रौर उसका प्रोटेस्टेंटवाद श्राज भी धार्मिक लवादे से मुक्त होकर, श्राधुनिक मजदूर श्रादोलन के रूप में जीवित है। तिल में रोविन हुड श्रौर कोलमैन — दोनो का सम्मिश्रण है, वह धरती है श्रौर श्रात्मा है, एक तगडा भिखारी है श्रौर धार्मिक उत्पीडन के खिलाफ मानव की श्रात्मा की श्रावाज है। वह लोक साहित्य का जीवित रूप है, हमारे रक्त में गर्मी लाता है तथा उसकी रवानी को तेज वनाता है।

सामयिक लेखक साधारण मानव के वारे में उतने सहज भाव से नही लिख पाता जितने सहज भाव से द कोस्टर या मार्क रुदरफोर्ड लिखते थे। मजदूर वर्ग के पुरुष या स्त्री के चित्रण का कार्य उसे परेशानी में डाल देता है। इसका कारण केवल यही नही है कि मजदूर वर्ग के लोगों के मुह में जवान नही है। उनमें श्रनेक मूक हैं, किन्तु समग्र रूप में उन्हें मानवमात्र से श्रधिक मूक नही कहा जा सकता। श्रमरीकी लेखको के एक पन्थ ने, जिसमें हेमिग्वे सबसे ज्यादा प्रसिद्ध हैं, एक हृदयहीन, किन्तु सीधे-सादे श्रौर गूगे टाइप के मजदूर की रचना की है। वह मुसीबतो की भट्टी में तपा है, श्रौर हेमिग्वे की प्रतिभा ने उसे सशक्त, सादी श्रौर फुटकल शब्द उच्चारण कर सकने वाली गूगी वाणी प्रदान की है। इस वाणी के साथ वह बिना शिकायत किए (इसलिए कि श्रनजाने में) मुक्केबाज, साडों से युद्ध करने वाले, वन्दूकबाज, भोजन परोसने वाले, श्रस्तबल के नौकर या सैनिक के रूप में जो दुखद जीवन उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, उसे स्वीकार करने के लिए निकल पडता है। श्रमरीकी उपन्यासकारों के इस मजदूर-चरित्र को विण्डहम लेविस ने "गूगा पशु" की सज्ञा दी है। जीवन की उस कुत्सा तथा गदगी के सामने जो इस हद तक उन्हे निरन्तर घेरे रहती है, निस्सन्देह वे बहुत ही निष्क्रिय पदार्थ हैं।

क्या यह मजदूर का सच्चा चित्र है? निश्चय ही नही। सातवें श्रौर श्राठवें दशक में लन्दन का फुटकल मजदूर भी — जो कि श्रत्यत दुखी

प्राणी था — इस तसवीर में मुश्किल से ही फिट किया जा सकता है। एक गूगे और प्रतिरोध-शून्य जन समुदाय के रूप में मजदूर वर्ग का चित्रण करने वाली इस प्रवृत्ति का, जो कि कुछ समाजवादी उपन्यासकारो में और साथ ही अमरीका के आधुनिक व्यक्तिवादियो मे पाई जाती है, एंगेल्स जोरो से विरोध करते थे। मिस हार्कनेस के नाम अपने पत्र में, जिसमें से पहले भी उद्धरण दिया जा चुका है, इस रवैये की निन्दा करते हुए उन्होने लिखा था

"यथार्थवाद का, मेरी समझ में, यह तकाजा है कि विवरण की सचाई के अलावा प्रतिनिधि परिस्थितियो में प्रतिनिधि चरित्रो का भी सच्चा चित्र खीचा जाए। तुम्हारे चरित्र, अपनी सीमाओ के अन्दर, काफी प्रतिनिधि तो है, किन्तु उन परिस्थितियो के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती जिनमें कि वे हरकत करते हैं और जो उन्हे अमल के लिए बाध्य करती हैं। *शहरी लड़की* (मिस हार्कनैस के उपन्यास का नाम — रैल्फ फौक्स) में मजदूर वर्ग का एक निष्क्रिय जन समुदाय के रूप में चित्रण हुआ है जो अपनी सहायता स्वय करने की क्षमता नही रखता, यहा तक कि अपनी सहायता करने की इच्छा भी उसमें नजर नही आती। इस घातक गरीबी से उबरने के सारे प्रयास बाहर से, ऊपर से होते हैं। सेइन्ट-साइमन के शब्दों में वह 'सबसे अधिक गरीब, सबसे अधिक पीडित और सबसे अधिक सख्या वाला' वर्ग है। रौबर्ट ओवन ने उसे 'सबसे गरीब, सबसे गिरा हुआ वर्ग,' कहा है — रैल्फ फौक्स)। मजदूर वर्ग का यह वर्णन १८००–१८१० के लिए, सेइन्ट-साइमन या रौबर्ट ओवन के समय के लिए, भले ही सच्चा हो, किन्तु इसे १८८७ के लिए सच्चा नही माना जा सकता, विशेष रूप से एक ऐसा आदमी तो इसे कभी सच्चा नही मान सकता जिसे लडाकू सर्वहारा के सघर्षों में लगभग पचास साल तक हिस्सा लेने का गौरव प्राप्त है और जिसने हमेशा इस सिद्धान्त को माना है कि मेहनतकश वर्ग की मुक्ति स्वय उसके अमल के द्वारा होनी चाहिए। अपने वातावरण के उत्पीडन के विरुद्ध मजदूर वर्ग का 'क्रान्तिकारी प्रतिरोध, मानवीय अधिकारो के लिए उसके सरगर्म प्रयास — वे चेतन हो चाहे अर्द्धचेतन — इतिहास का

हिस्सा वन चुके हैं और वे यथार्थवाद के क्षेत्र में स्थान पाने का दावा कर सकते हैं।"[1]

मजदूर वर्ग के वारे में यह गलत दृष्टिकोण, जिसके लिए ऐंगेल्स ने मिस होर्कनैस को उलाहना दिया था, आज अधिकाश बुद्धिजीवियों ने, और विशेप रूप से कथा-साहित्य के लेखको ने, अपना रखा है। इतना ही नही, वल्कि वे उसका दामन और भी जोरों से पकडे हुए हैं, कारण कि एक ओर तो वे वडे पैमाने पर उत्पादन के रूप में प्रकट होने वाले अत्यधिक यत्रीकरण की उस वढती का अनुभव करते हैं जिसने मजदूर की निजी पहलकदमी को नष्ट कर उसे मशीन का एक पुर्जा मात्र वना दिया है, दूसरी ओर फासिज्म के खौफ का शिकार होकर वे मजदूर को दोप देने लगते हैं। उनकी दृष्टि में मजदूरो की मशीन-तुल्य आज्ञाकारिता ही ऐसी सामूहिक गुलामी को सम्भव वनाती है। इस प्रकार उनकी शिकायतें फ्लौवर्ट की शिकायतो की ही गज हैं, जो जन साधारण को इस वात के लिए दोषी ठहराता था कि उसने (सार्वभौमिक मताधिकार के द्वारा) लुई नैपोलियन वोनापार्ट की तानाशाही की स्थापना में सहायता की।

मजदूर वर्ग के जीवन की सचाई से इसका दूर का भी वास्ता नही है। हडतालो के आकडो तथा उनके कारणो की सक्षिप्त सूची पर सर-सरी नजर डालने से ही यह धारणा मिथ्या सिद्ध हो जाती है। सत्य यह है कि जन साधारण को मशीन वनाने के प्रयासो के विरुद्ध एकमात्र मजदूर वर्ग ही है जो सघर्ष करता है, एकमात्र मजदूर वर्ग ने ही मशीन या मानव के हमले के विरुद्ध सघर्ष का सारा वोझ अपने कधो पर उठाया है। एक दिन भी ऐसा नही वीतता जव, प्रत्येक फैक्टरी में—चाहे वह छोटी हो या वडी—कोई-न-कोई अधिक या कम गम्भीर घटना न घटती हो। फोरमैन को कोसने-गाली देने जैसे इक्के-दुक्के, हल्के और व्यक्तिगत विरोध हो या अधिक जोरदार सामूहिक कार्रवाई, लडाई कभी नही रुकती।

एल्मर राइस[2] तथा "अभिव्यक्तिवादी" (ऐक्सप्रैशनिस्ट) पन्थ के अन्य लेखकों के नाटको, हक्सले की *वीर नयी दुनिया,* इस तरह

की अन्य दर्जनो पुस्तको, नाटकों और फिल्मो ने यन्त्रचलित मानव— जो अज्ञान में डूबा, निरा शून्य, कोल्हू के बैल के समान है—के विकास की धारणा का पोषण किया है। यह सत्य का अत्यत विकृत रूप है युग के वास्तविक मानवीय सघर्षों मे बुद्धिजीवी के अलगाव का, जिस यन्त्रीकरण से वह इतना डरता है, उसके विरुद्ध लडने वाली किसी शक्ति को न देख पाने के कारण उसकी निराशा का, परिणाम है। फिर भी हर हडताल, वल्कि यू कहना चाहिए कि कारखाने के जीवन का प्रत्येक दिन, व्यक्तिगत पहलकदमी, सूझबूझ, साहस और चरित्र-वल को, मानव के शरीर और मस्तिष्क को गुलामी के शिकजे में जकडने की इस कोशिश के खिलाफ, वातावरण के यांत्रिक दवाव के खिलाख उसके विद्रोह के अग के रूप में विकसित करता है। निश्चय ही इस वात को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता कि कारखाने में मानव को दास वनाने की इस कोशिश के साथ-साथ लोगों के मस्तिष्क पर एक और भी ज्यादा खतरनाक तथा कही अधिक वडा हमला किया जा रहा है। वस्तुगत दृष्टि से, सभ्य जीवन के स्थापित मूल्यो के आधार पर किसी समाचार पत्र को पढना, फिल्म देखना, किसी नाटक या उपन्यास की आलोचना करना, हमारे लिए विरल हो गया है। अगर हम इन मूल्यो की कसौटी पर परख कर देखें तो इस निर्णय पर पहुचे विना नहीं रहा जा सकता कि हमारे युग का वडे-पैमाने में उत्पादित वौद्धिक जीवन का अधिकाश भाग ऐसे पागल लोगों की वहक की उपज है जो हर प्रकार की मानसिक तथा नैतिक विकृति से ग्रस्त हैं।

शिक्षा-प्रणाली, जिसे पूजीवाद ने दृढता से अपने चगुल में दवोच रखा है, स्त्री-पुरुषों के लिए उस घातक हमले से अपना वचाव करना और भी कठिन वना देती है, जो कि उनकी चेतना-इन्द्रियो के रास्ते उनके मस्तिष्को पर हो रहा है। भ्रष्टाचार का, आध्यात्मिक भ्रष्टाचार का, व्यापक प्रसार है और वह इस मानसिक खोखलेपन के विनाशकारी प्रभावों के खिलाफ हमारे सामूहिक प्रयास के मार्ग में भयानक वाधा डालता है। किन्तु मजदूर वर्ग पर, इस मायने में भी, निष्क्रियता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। निराशा से पस्त वुद्धिजीवियो के मुकाविले

भ्रष्टाचार के इस अत्यन्त कुत्सित रूप के खिलाफ वही कहीं अधिक दृढ़ता से सघर्ष कर रहा है। यदि ऐसा नही है तो फिर स्वशिक्षा के हजारो केन्द्रो, चलते-फिरते क्लवो, सिनेमा और नाटक सोसाइटियो, सदस्यो की भारी सख्या से युक्त वामपक्षीय पुस्तक-क्लवो का और क्या मतलव है ? यदि वुद्धिजीवी भी इस प्रतिरोध सगठन में समूचे हृदय से शामिल हो जाय तो उन्हे इतना कोसने-चिल्लाने की आवश्यकता न पडे (अनेक, और ये उनके लिए गौरव की वात है, इसमें शामिल हो भी गए हैं)। मूल कठिनाई यह है कि खुद वुद्धिजीवी साफतौर से यह नही समझ सका है कि जिस भ्रष्टाचार से सही मानी में वह इतना भयभीत है, वह किसी नैतिक रोग का नही, बल्कि ह्रासग्रस्त समाज व्यवस्था का परिणाम है। इसमें दोष अपने-आप में न तो मशीन का है, और न ही सिनेमा का, वल्कि दोष है व्यक्तिगत स्वामित्व का, जो मशीन और सिनेमा, दोनो पर समान रूप में कायम है।

फैक्ट्रियो में बडे पैमाने पर उत्पादन की प्रणाली की विभीषिकाओ के खिलाफ यह प्रतिरोध अन्ततोगत्वा फैक्ट्रियो में ही सीमित नही रह सकता। उसका फैक्ट्री के बाहर आना अनिवार्य है, और वह बाहर आ भी रहा है। इसका सर्वोच्च रूप युद्ध के खिलाफ, फासिज्म और हर स्वरूप की राजनीतिक प्रतिगामिता के खिलाफ प्रतिरोध में प्रकट होता है, मानवीय सस्कृति के सचेत सरक्षण का वह रूप धारण करता है, वह जनता की महान वीरतापूर्ण कार्रवाइयो को जन्म देता है और नये नायक, नये साचे के स्त्री-पुरुषों की रचना करता है। इस मत से शायद ही किसी का विरोध हो कि हमारे काल में नैतिक गौरव और साहस की एक ऐसी मिसाल मौजूद है जिसे मानवीय इतिहास की महानतम मिसालों के समकक्ष रखा जा सकता है। हमारा आशय लीपजिग की फासिस्त अदालत द्वारा लगाये गये अभियोग के खिलाफ दिमित्रोव के अपने उत्तर से है। और दिमित्रोव के व्यक्तित्व का निर्माण, इन्हीं सघर्षों के दौरान में हुआ, जिनका ऊपर वर्णन कर चुका हू। वल्गारिया के इस छापाखाने के मजदूर का मानसिक और नैतिक विकास अपने साथी मजदूरो को ट्रेड यूनियनो में एकजूट करने के काम के साथ आरम्भ हुआ,

इसके वाद १६१२ से लेकर १६१८ तक युद्ध के, और फिर, १६२३ में, फासिज्म के, जिसने गैरकानूनी ढग से देश की लोकतान्त्रिक सरकार का तख्ता उलट दिया था, खिलाफ सघर्ष में मजदूर-वर्ग का उसने नेतृत्व किया, और अन्त में समूची मानवता तथा उसकी सस्कृति के रक्षक के रूप में फासिस्त वर्बरता के ताण्डव के खिलाफ लीपजिग की अदालत में वह खडा हुआ। कह सकते हैं कि सुकरात की भाति उसका समूचा जीवन मानो अपने इसी वयान की तैयारी में वीता था।

इसमें कोई सन्देह नही कि रीशताग अग्निकाण्ड की यह कहानी हमारे युग का एक महाकाव्य है, जिसे मूर्त्त कर कोई भी कलाकार अपनी लेखनी को सार्थक कर सकता है। वह वातावरण अविस्मरणीय है . हिटलर के सत्तापहरण[1] से ठीक पहले का वर्लिन, वाजारो और वीयरघरों में पागलपन का एक वुखार-सा छाया हुआ, वे जिन्हे अपने हथियार संभालने चाहिए थे अभी भी मन-ही-मन दोहरा रहे थे कि खतरे की ऐसी कोई वात नही है, वे जिनकी जानो पर खतरा मडरा रहा था, यह समझ कर कि एकता से इन्कार करके लोकतत्र ने दुर्ग शत्रु के हाथो में सौंप दिया दिया है, अब गुप्त रूप से सघर्ष जारी रखने की तैयारियो में जुटे थे, और धनिको के क्लवो में, मत्रालयो में, समाचार पत्रों के दफ्तरो में, सैनिक हेडक्वार्टर में, निरतर साजिश का वाजार गर्म था, अपने-अपने गुट का पक्ष मजवूत करने के लिए सौदेवाजी चल रही थी, जर्मनी के लोकतत्र को नेस्तनावूत करने के लिए तैयारिया जारी थी।

इस सव के वीच ठस-दिमाग, विकार-ग्रस्त और आगजनी का शौकीन वान डेर लूव्व—समाज के प्रति वेमानी घृणा से दहकता और चेतना की उस खतरनाक सीमा-रेखा पर पहुचा हुआ जो उन दिनो के वातावरण में इतनी फिट वैठती थी—वर्लिन के वाह्य छोरो में मटर-गश्ती करता है—शयनघरो में जहा सीग समाता है सो जाता है, राष्ट्रीय-समाजवादी वर्दी पहने कोई तलछटिया मिल जाता है तो वढ-चढकर उससे वातें वनाता है। शायद वह अभी भी पागल है, हालाकि वे पुलिस के जासूस, तूफानी दस्ते के लौंडेवाज सैनिक, स्थानीय नाजी अफसर, जिनसे उसकी मुठभेड होती है, यह नही देख पाते। आगजनी की अपनी

तुच्छ हरकतें करने के लिए, रात को वह बाहर निकलता है, उन लपटों को देखकर चटखारे लेता है जिन्हें लोग आसानी से बुझा लेते हैं, और नाजी समाचार पत्रो के भडकावा भरे प्रचार की रौ में बहकर अपने-आप को एक महान अग्नि-काण्ड के हीरो के रूप में देखता है। क्या ही मजा आए अगर उस रीशटाग को जलाकर खाक कर दिया जाय, जिसमें दुनिया-भर के बातूनी जमा होते हैं और गरीब को उसके दुश्मनो के हाथ बेंच देते हैं। नाजी जासूस उसके पागल-प्रलाप की एक-दूसरे से चर्चा करते हैं और बात अपने ठिकाने पर पहुच जाती है। इसके बाद मच तैयार कर दिया जाता है, नाजी पुराण के अभीष्ट सत बार्थो-लोमियो[1] के लिए सकेतस्वरूप लपटें लपलपाने लगती हैं।

शैतानी चक्र के इस भवर में तीन भले आदमी दुर्भाग्यवश फस जाते हैं। ये हैं बल्गारी कम्युनिस्ट शरणार्थी। उनकी गिरफ्तारी हिटलर को मनचीता मौका प्रदान करती है। बल्कान के तीन ऐसे "बर्बर" व्यक्ति उसके हाथ लग जाते हैं, जिन्हें वह अपनी आगजनी के लिए जवाबदेह ठहरा सकेगा और दुनिया को वह सचमुच विश्वास दिला सकेगा कि इससे भी कही बडी आग से सभ्यता को बचाने के लिए उसका अवतरण हुआ है। इसके बाद, टॉर्गलर नाम का एक भीरु, सतुलित दिमाग का, बाइज्जत, ठेठ निम्न मध्य वर्गीय जर्मन इस अभियोग को सुन कर एकदम स्तम्भित रह जाता है कि रीशटाग को जलाने के पागल कृत्य से उसका, एक ऐसे आदमी का जिसने कम्युनिस्ट डिपुटियो के नेता की हैसियत से रीशटाग के अधिवेशनो में इतना महत्वपूर्ण काम किया है—कोई सम्बध हो सकता है। वह इस हद तक विचलित हो उठता है कि खुद अपनी असन्दिग्ध निर्दोषता से इस अभियोग को झूठा सिद्ध करने के लिए अपने-आप को पुलिस के हाथो में सौंप देता है। वह सोचता है . हो सकता है कि जर्मन अदालतें पूर्णतया तटस्थ न हो, यह भी हो सकता है कि पुलिस बर्बरता से मुक्त न हो, किन्तु ऐसा नही हो सकता कि एकदम पागल हो।

जेल में इन चार आदमियो को दिन-रात जजीरो से जकड कर रखा जाता है। तीन बल्गारियनो में से दो जर्मन भाषा नही समझते। उन्हें एक-दूसरे से अलग रखा गया है। उन्हें बाहर की दुनिया की कोई

खबर नही मिलती। वे केवल इतना जानते हैं कि एक कल्पनातीत और सर्वथा असम्भव अभियोग के लिए उन्हे एक भयानक तथा लज्जाजनक मौत के खतरे का सामना करना पड रहा है। उन्हें मारा-पीटा जाता है, पढने के लिए कोई चीज नहीं दी जाती, और कुछ समय के लिए उन्हें अन्धेरी सी कोठरी में तथा जजीरो में जकड कर रखा गया है। मौत से वे नहीं डरते, मौत और यत्रणा, दोनो का ही अपने देश की जेलो में वे सामना कर चुके हैं। किन्तु वहा कम-से-कम वे इतना तो जानते ही थे कि बाहर उनके अपने साथी मौजूद हैं, जो उनकी लडाई को जारी रखे हैं। यहा तो ऐसा लगता है जैसे उन्हे पागलपन के एक ऐसे अन्धे कुए में डाल दिया गया हो, जहा केवल जल्लाद की कुल्हाडी की भयानक चमक ही अन्धेरे में एकमात्र रोशनी है। उनमें से एक, इस तसवीर से त्रस्त होकर, सोचता है कि अगर मरना ही है तो क्यों न वह खुद अपना अन्त कर डाले ? गन्दे हाथों मरने से तो यह कहीं अच्छा होगा। सो वह अपनी कलाई की एक नस काट डालता है। किन्तु वह मरता नही। आत्म समर्पण से वे दोनो इन्कार करते हैं, किन्तु वे लडते भी नही। उन्हें सघर्ष का कोई रास्ता नजर नही आता कि किस प्रकार वे उस जीवित दुनिया से सम्पर्क स्थापित करें, जिसमें उन्हें बचाने की सामर्थ्य है।

टॉर्गलर पर शीघ्र ही अपनी गलती प्रकट हो जाती है। शिकारी अपने "बाइब्बत" शिकार के आत्माभिमान को भू-लुठित करने में खूब रस लेते हैं। वे उसे बताते हैं कि तुम्हें गोली मारी जाएगी . फिर एक अन्धेरे गलियारे में से हाकते हुए उसे ले जाते हैं और उसकी गर्दन में पीछे से पिस्तौल छुआते हैं। भय के मारे वह चीख उठता है। साधुता का वह चोला जिससे अपनी निर्दोषता की रक्षा करने वह चला था, खिसक कर नीचे जा गिरता है और वह एक अत्यन्त भयभीत मानव मात्र रह जाता है, आत्म-प्रतीष्ठा का ऊपरी भ्रम कुछ बना रहे, केवल इसकी वह कोशिश करता है, इससे अधिक और कुछ नही।

दिमित्रोव पर भी यह सब बीतती है। किन्तु वह दूसरो से भिन्न है। वह इस स्थिति को अपने समूचे जीवन के एक हिस्से के रूप में

श्रौर श्रपनी हाजिर जवाबी तथा तेज बुद्धि से उनकी चिदिया बिखेरने वाला छापेखाने का मजदूर बन्दी, विद्वान जज की निन्दनीय जी-हुजूरी—बडे-से-बडे हास्याभिनेता के लिए यहा पर्याप्त सामग्री मौजूद है। श्रौर यदि श्रापको पागलो के भोज का वातावरण पसन्द है तो इस मुकदमे के गवाह निश्चय ही श्रापकी इस इच्छा को भी पूरा कर देंगे।

श्रौर इस समूचे दौरान में वान डेर लूब्ब की श्राकृति बराबर मौजूद रहती है। श्रकेला वही एक ऐसा श्रादमी है जो सत्य को प्रकट कर सकता था—झुका हुश्रा, भारी भरकम, मूक, मानव के पतन की साकार प्रतिमा, मानव जो सब कुछ खो चुका है, श्रात्मा नाम की चीज जिसके पास नही है, इस मेफिस्टोफीलियाई[1] नाटक का "श्रभागा फॉस्ट।"[2]

यह नाटक इतना श्रधिक कर्कश श्रौर इतना श्रधिक मर्दाना है कि कोमल हृदय वाले पाठको को श्रखर सकता है। सो कुछ प्रेम भी चाहिए—क्यो, ठीक है न? जेल में दिमित्रोव को श्रपनी पत्नी के मरने का समाचार मिलता है। वह सर्बिया की मजदूर लडकी थी, ट्रेड यूनियन में काम करती थी, कविताए लिखती थी श्रौर उसके जीवन तथा सघर्षों की साथिन थी। खबर सुनकर उन्होने श्रपनी मा को एक पत्र लिखा। इस पत्र के एक वाक्य से हम उनकी भावनाश्रों का कुछ श्रनुमान कर सकते हैं। उनकी पत्नी, ल्युबा भी—उन्होने लिखा—हीरोइन है, "हमारी श्रविस्मरणीय ल्युबा।" फिर एक श्रन्य स्त्री का—उनकी झुर्रियो से भरे चेहरे वाली वृद्ध किसान मा का, प्रेम है, जिसने श्रपने सभी बेटे क्रान्ति को भेंट कर दिये थे, जिनमें से दो मर चुके थे। बाइबल की भाषा में वह सोचती है। उसका बेटा ज्योर्ज दिमित्रोव उसके लिए साक्षात "सन्त पॉल" है।

कहने की श्रावश्यकता नही कि श्राधुनिक उपन्यासकार ऐसी सामग्री से सन्तुष्ट नही होगा जो रोचक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का कुछ भी श्रवसर प्रदान न करे। इसके लिए, दिमित्रोव की वह मकान-मालकिन कैसी रहेगी जिसने श्रपने मोहक किरायेदार के साथ श्रपनी सगाई का ऐलान करते हुए श्रद्भुत जर्मन कार्ड छपा रखे थे, हालाकि उसकी

कोई सगाई नही हुई थी ? मध्यवर्ग की इस जर्मन महिला के लिए वह उसका दुर्लभ आदर्श, भावना लोक का मगेतर था।

उपन्यास की विषय-वस्तु के रूप में इस घटना की सम्भावनाओ के बारे में इतना अधिक लिखने पर आपका यह पूछना सर्वथा न्याय-सगत है कि आखिर इस लम्बी वहक का प्रस्तुत पुस्तक के विषय से क्या सम्बध है ? शायद इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि हमारे आधुनिक जीवन में ऐसी अनेक असाधारण घटनाए हैं जो कल्पनात्मक व्यवहार की अपेक्षा रखती हैं, ऐसे विषय हैं जिनमें अद्भुत के साथ वीरता का, क्रूरता के साथ मानव की शान्त आत्मा का, कमीनेपन के साथ सच्ची मित्रता या लगाव का, पागल की वडवडाहट के साथ मानसिक साहस से उत्पन्न झुलसा देने वाले व्यग्य का समावेश है। और इन सब के बीच से प्रकट होता है एक व्यक्तित्व, जिसका अध्ययन अनिवार्यत हमारे अनुभव तथा मानव के वारे में हमारे ज्ञान का विस्तार करेगा, हमारी अपनी शक्तियो में हमारे विश्वास को पुष्ट और जीवन के बारे में हमारी समझ तथा पकड को गहरा बनाएगा।

कारण कि यह समझना गलत होगा कि लीपजिग के उस सघर्ष के लिए दमित्रोव मा के पेट मे ही लैस होकर आया था। उनका जीवन अपने आप पर काबू पाने और अपने को नये साचे में ढालने का एक सुदीर्घ प्रयास था और इसी के साथ-साथ, अपने वल्कान देश के अर्द्ध-सामन्ती पूजीवाद के खिलाफ एक युद्ध था। हम में से वे लोग जिन्होने १९२३[1] में बल्गारियन विद्रोह की विफलता के बाद उन्हे देखा है, जानते हैं कि आगामी वर्षों में किन मानसिक ज्वालाओ के बीच से उन्हे गुजरना पडा। लम्बे अर्से तक उन्होने अपने-आप से युद्ध किया, निर्मम आत्म-आलोचना के दौर से वह गुजरे। वह विफलता इस बात की सूचक थी कि उनमें कच्चापन मौजूद था, अभी इस योग्य वह नही हुए थे कि लोगो का विजयी नेतृत्व कर सके। उन्होने इस विफलता के भारी बोझ को—विद्रोह में जो जानें गवाई गयी, उनके प्रति तथा अपने ध्येय के अस्थाई खण्डन के प्रति अपनी जिम्मेवारी के एहसास को—कठोर बनकर वर्दाश्त किया, विफलता के कारणो का उन्होने पता लगाया।

मालूम हुआ कि तग सकीर्णतावाद और बल्कान के समाजवादी आन्दोलन का अवसरवाद सारे रोग की जड है। अपनी कमजोरियो को दूर करने के लिए उन्होने दिन-रात एक कर दिया, और उस समय तक जुटे रहे जब तक कि उनमें लेनिन और रूस के मजदूर वर्ग के अनुभव से पुष्ट सच्चे *बोल्शेविक* का निखार नही आ गया।

"मैं मानता हू कि मेरा स्वर कडा और पैना है," उन्होने जज से कहा। "मेरे जीवन का सघर्ष भी कडा और पैना रहा है। मेरा स्वर निर्द्वन्द्व और उन्मुक्त है। मैं चीजो को उनके सही नाम से पुकारता हू मैं अपना, एक अभियुक्त कम्युनिस्ट का, बचाव कर रहा हू, मैं अपने राजनीतिक सम्मान की रक्षा के लिए, क्रान्तिकारी के रूप में अपने गौरव की रक्षा के लिए, यहा खडा हू, मै रक्षा कर रहा हू अपनी कम्युनिस्ट विचारधारा की, अपने आदर्शों की, अपने समूचे जीवन के सार-तत्व और महत्व की।"

मुकदमे के बाद तीनो बल्गारी बन्दी, पहली बार, एक ही कोठरी में मिले और दिमित्रोव ने सबके सघर्ष का लेखा-जोखा लेते हुए बताया "हम चार थे, चारो कम्युनिस्ट—चार सुसज्जित सैनिक। तॉर्गलर एक भगोडा है, अपनी राईफल फेंक कर युद्ध क्षेत्र से वह भाग खडा हुआ। तुम दोनों ने अपनी राइफलें नही फेंकी, अपनी जगह पर तुम डटे रहे, किन्तु तुमने गोली नही दागी, और शुरू से आखीर तक अकेले मुझे ही गोलीवर्षा करनी पडी।" उन्होंने अकेले गोलीबारी की, किन्तु उनकी बौछार इतनी सशक्त थी कि दुश्मन को दबना और अन्त में मैदान छोडकर भागना पडा। लेखक के लिए वह हमेशा मानव के दुश्मनो के खिलाफ मानव की विजयी आत्मा के प्रतीक रहेंगे। वही हैं सजीव मानव।

ग्यारह

गद्य की विलुप्त कला

पाठकों को यह स्मरण कराना निस्सन्देह निरर्थक ही प्रतीत होगा कि किसी व्यक्ति का कल्पनात्मक इतिहास लिखने का काम कलात्मक सृजन के अत्यत कठिन काम में हाथ लगाना है। दिमित्रोव का चरित्र और लीपजिग के वे प्रचण्ड दिन किसी उत्साही उपन्यासकार के लिए भारी आकर्षण की चीज हो सकते हैं, किन्तु यदि वह यह समझे कि केवल व्यक्तियो और घटनाओं का रोचक वर्णन करके ही उपन्यास लिख लिया जा सकता है, तो इससे काम नही बनेगा। नही, उपन्यास केवल उसी हद तक इतिहास है जिस हद तक कि वह मानव के अस्तित्व, उसके विकास, उसके जीवन-यापन और शायद उसकी मृत्यु तक की कहानी कहता है। यथार्थ इतिहास लेखन मे उसका कोई सम्बध नही है, जिसमें अनुमान के लिए कोई जगह नही होती, जिसमें अथ मे इति तक तुलना, विश्लेषण और परिलक्षित तथ्यो मे ठीक-ठीक सिद्धान्त-निरूपण होता है।

दिमित्रोव की कल्पनात्मक सृष्टि के लिए प्रथम वास्तविक दिमित्रोव को अलग रखना होगा जो मास्को में रहता है और कम्युनिस्ट इण्टर्नेशनल की इमारत में जिसका दफ्तर है।[1] एक तरह से, यह समझ लीजिए कि, कोरे कागज से शुरूआत करनी होगी। तभी कल्पना के ऐसे सर्वथा नवीन दिमित्रोव की रचना की जा सकेगी जो यथार्थ दिमित्रोव से एकबारगी महान भी होगा और उससे घटकर भी—महान इस कारण कि यदि आप एक अच्छे लेखक हो तो आपकी कल्पना उसकी छवि को गौरवमय बना देगी, घट कर इस कारण कि आप उसे उसके यथार्थ हाड-मास

वाले सजीव रूप में जैसा-का-तैसा मूर्त करने में कभी सफल नही हो सकेंगे — उसकी तमाम शारीरिक विशिष्टताओं को, उसके मस्तिष्क की प्रखरता को, उसके दोषो और गुणो को नही पकड सकेंगे। कहने की आवश्यकता नही कि कोरे कागज को लेकर आरम्भ करने के बावजूद एक वास्तविकता से फिर भी आपको जूझना होगा और आप जो कुछ फल प्राप्त करेंगे वह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस वास्तविकता को परखने के लिए आपकी दृष्टि कितनी पैनी है। यदि आपकी दृष्टि पैनी, प्रखर, लगभग दिव्यदृष्टि के समान (एकदम दिव्य भी नही, क्योकि दिव्य में चिन्तन का कुछ अभाव होता है) न हो, तो आप अपनी अनुभूति की दुनिया में अपने पाठको को कभी उस भावावेग के साथ ले जाने में सफल नही हो सकते, जिसके बिना उनकी दृष्टि में दिमित्रोव फिर से सजीव नही बन सकते। आपको अपनी अनुभूति का अन्य लोगो को बर-बस अनुभव कराना है, जीवन की अपनी गोचरता को उनके लिए गोचर बनाना है, और ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस वास्तविकता से आपकी प्रतिभा को जूझना है, उस पर आपको पूर्ण दक्षता प्राप्त हो।

यदि आप बहुत बडे लेखक हैं तो, निस्सन्देह, एक ऐसी नयी दुनिया की सृष्टि करने में आप सफल होंगे, जिसमें आपका चरित्र दिमित्रोव, काल और स्थान के बन्धनो से परे, अपना एक निजी जीवन व्यतीत करता हुआ प्रकट होगा। वह पात्र, एक अर्थ में, आपका जरा भी नही है, कारण कि उसे आपने जीवन से छीना है और अनुभूति के वेग व शक्ति से अनुप्राणित होकर कोरे कागज पर फिर से मूर्त किया है। सामग्री पर जितनी अधिक आपकी दक्षता होगी, आपकी कृति में स्थायित्व की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी और उतने ही अधिक शानदार रूप में वह जीवन को, वास्तविकता को प्रतिविम्बित करेगी।

किन्तु दिमित्रोव, चाहे आपने डौन क्विग्जोट, टौम जोन्स, एन्ना करे-नीना या जूलियेन सौरेल की भांति काल के प्रभाव से मुक्त मानव चरित्र का सृजन क्यो न किया हो—मूलत· रहेगा छापेखाने का कम्युनिस्ट मज-दूर ही, जिसने अकेले हमारे समय की सबसे जबर्दस्त निरकुशशाही के खूनी शासको का मुह कुचला। वर्ग-सघर्षों और उन सघर्षों को प्रति-

विम्वित करने वाले सैद्धान्तिक द्वन्द्वों के बीच उसका उदय हुआ होगा। ऐसे चरित्र की रचना करने के लिए, मानव की आत्मा के कुछ चिरतन प्रतीत होने वाले गुणो के उस मूर्त रूप का उन यथार्थ ताकतों के साथ सम्वध स्थापित करने के लिए, जिन्होने उसके विकास और उसकी विजय को सम्भव बनाया, कुछ कलात्मक अस्त्रो से लैस होना जरूरी है।

ऊपर एक अध्याय में मैंने फ्लौवर्ट का एक कथन उद्धृत किया था जिसमें अपनी जगह पर यह ठीक ही कहा गया है कि महानतम लेखको की यह विशेपता रही है कि उन्होंने, प्रत्यक्षत अत्यत अडिग भाव से, अपनी कला के विशुद्ध रूपवादी पहलू की उपेक्षा की है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना न केवल खतरनाक ही, बल्कि मूर्खतापूर्ण भी होगा कि रूपवादी पक्ष अमहत्वपूर्ण है। वस्तुत ये महान लेखक अपने कौशल के पूर्ण उस्ताद थे और यदि वे बहुधा सभी नियमो को तोडते मालूम होते भी हैं तो केवल इस कारण कि उनकी रचनात्मक प्रतिभा को ऐसे नये नियमो की दरकार थी जो उनकी कल्पना की गरिमा के उपयुक्त हों। कला के रूपवादी पक्ष की उपेक्षा करना मार्क्सवाद की आत्मा के विपरीत है। मार्क्स विषय-वस्तु और स्वरूप को एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप में गुथा हुआ, जीवन के द्वन्द्वात्मक अन्तरसम्बध से जुडा हुआ समझते थे। वह उपन्यासकार जो समाजवादी यथार्थवाद को अपनाता है, स्वरूप-सम्बधी प्रश्नो को अत्यत महत्वपूर्ण समझता है।

उदाहरण के लिए "वातावरण" के प्रश्न को लीजिए। यह पात्र और वातावरण के बीच का वह नाजुक सम्बध है जिसे मूर्त करना इतना कठिन है और जो—यदि लेखक को अपने पात्रों की वास्तविकता को गहरा बनाना है, अपनी कृति के निर्णयात्मक क्षणों को घटनाक्रम के आवश्यकतानुकूल घनीभूत बनाना है—लेखक के लिए आवश्यक है। और देखा जाए तो अधिकाश सामाजिक उपन्यासो में, ठीक इसी गुण का सर्वथा अभाव नजर आता है। इसमें शक नही कि वातावरण के प्रति समाजवादी लेखक का रवैया बिल्कुल वैसा ही नही हो सकता जैसा कि पुराने पथ के यथार्थवादी लेखको का होता था, किन्तु वह उसकी उपेक्षा नही कर सकता और अतीत के लेखको से, तथा वर्तमान के श्रेष्ठतम

उपन्यासकारो से वातावरण की रचना के साधनों के वारे में वह वहुत कुछ सीख सकता है। उदाहरणार्थ आधुनिक लेखकों में फौकनर वातावरण की रचना करने में उस्ताद हैं, यहा तक कि आतक, पागलपन या भय का वातावरण कभी-कभी उनकी कृतियो पर पूर्णतया हावी हो जाता है, करीव-करीव सभी पात्रो को वह दवोच लेता है। जव फौकनर आतक पैदा करना चाहते हैं तो हवा तक भय से थरथराती हुई प्रतीत होती है और बहुधा यही उनका दोष भी है कि वह, इस मामले में, रोमाण्टिक लेखक के बुरे-से-बुरे फदो में फस जाते हैं।

किन्तु पात्र और वातावरण की हमारी कल्पना ऐसी नहीं है। हम इन दोनों को दो अलग, समानान्तर किन्तु असम्बद्ध, उपन्यास के घटना-क्रम के समूचे दौरान में अपने सम्बधो में अपरिवर्तनीय, नही मानते। अपने आशय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए दिमित्रोव की कहानी का मैं यहा फिर उल्लेख करूगा। वातावरण के विना इस उपन्यास की कल्पना तक नहीं की जा सकती। सर्वप्रथम सत्तापहरण के ठीक पहले के वर्लिन के वातावरण को लीजिए भय और सन्देह से आधा पागल महा नगर, जिसमें कुछ प्रकट है, कुछ अप्रकट, आधुनिक नगर के जीवन की सारी ध्वनिया और रोशनिया—पहियो की खडखडाहट, भूमिगत गाडियो की गडगडाहट, सडक की रगविरगी रोशनियो के भवर और चकाचौंध—हर चीज उन्माद, आतक और सम्भावित की वेचैन प्रतीक्षा के इस भयानक सगीत में गुथी और डूवी हुई। इस पृष्ठभूमि में आपके पात्र सबसे पहले सामने आएगे और सम्पूर्ण दृश्य, सम्भवत, म्युनिख-ट्रेन में दिमित्रोव के आगमन में विलय हो जाएगा—पौ फटने का समय, अपने डिब्वे की महिला-यात्री से चुपचाप वात करता हुआ दिमित्रोव, उस समाचार पत्र को खरीदना जिसमें रीशटाग अग्निकाड की खबर छपी है, और स्टेशन से वाहर निकलकर नगर में उनका प्रवेश जहां उनके दुश्मन उनकी ताक में तैयार वैठे हैं, खुद अपनी भडकाई हुई लपटो से मदहोश, अपने कृत्यो की वास्तविकता से वेखुद और बेखबर।

ऐसे नगर से कैदखाने (जो नये निजाम का प्रतीक है) में सक्रमण स्वाभाविक है। वातावरण यहा भी वही है, किन्तु अधिक घनीभूत

ग्रौर उसके बीच ग्रापका चार "कम्युनिस्ट सैनिको" का छोटा-सा दल खडा है। कलाकार को यहा वहुत ही वारीकी के साथ वातावरण को वदलता हुग्रा दिखाना होगा, क्योंकि जिस ग्रधकार, क्रूरता तथा ग्रातक को प्रथम दृश्य से निचोड कर वह दूसरे दृश्य में ले ग्राया था, उसमें—ग्रपने दुश्मनो के विरुद्ध लडते हुए दिमित्रोव का व्यक्तित्व ज्यों-ज्यो उभर कर प्रमुत्व ग्रहण करने लगता है—कुछ नये तत्वो का प्रादुर्भाव होना होगा। कैद मे युद्ध क्षेत्र का यह परिवर्तन उसे ग्रपने "वातावरण" में दिखाना होगा।

इसके वाद, सवसे ग्रन्त में, मुकदमा, क्योकि ग्रदालत ही वह मजिल है जिसमें प्रथम दृश्य वाले नगर का समूचा ग्रजीवोगरीव निशाचर जगत कटघरे में खडे चार सैनिको का सामना करने के लिए प्रकट होता है। इस वातावरण में प्रत्येक सैनिक की पृथक प्रतिक्रियाए, ग्रौर फिर उनमें से एक, एकवार ग्रौर ग्रपनी इच्छाशक्ति का सिक्का वातावरण पर जमाता है, ग्रौर मानव-ग्रात्मा के इस तरह हावी होने के साथ-साथ वातावरण में प्रकाश ग्रौर वायु का सचार करता है। किन्तु इस समूचे दौरान में भी उपन्यासकार को यह नहीं भूलना है कि विद्वान जजो, चुस्त-दुरुस्त पुलिसवालों तथा हृदयहीन वकीलो ग्रौर उत्सुक पत्रकारो से लैस इस गम्भीर ग्रदालत के नेपथ्य में जेल की कालकोठरिया हैं, जिनमें, हर पेशी के वाद, वन्दी फिर वद कर दिए जाते हैं ग्रौर जिनमें, ग्रदालत से निकाले जाने के वाद, हर वार दिमित्रोव को धकेल दिया जाता है। ग्रपने इस "वातावरण" को इस खूवी के साथ उसे चित्रित करना होगा कि पुस्तक का ग्रन्त, एकदम स्वाभाभिक गति से, वीथोवन की नवीं सिम्फोनी' की भाति सवल ग्रौर सशक्त हो। मानव को मुक्त करनेवाली ग्रवाजों से जीवन का वह विजयी सगीत प्रवाहित हो कि ग्रदालत तथा जेल की दीवारें भरभरा कर गिर पडें।

फ्रान्सीसी निवन्धकार ग्रलेन ने *ललितकला के सिद्धान्त* शीर्षक ग्रपनी पुस्तक में एक स्यल पर उपन्यास में *वर्णनात्मक* लेखन के स्थान का वहुत ही सही उल्लेख किया है "गद्य की दो पद्धतिया हैं जिन्हें विचारात्मक ग्रौर वर्णनात्मक कहा जा सकता है। उन्ही के

आधार पर वस्तुए अपना अस्तित्व कायम रखती हैं और भावनाए आकार ग्रहण करती हैं। सक्षेप में, वर्णन को सहारा मिलना चाहिए, और उपन्यासकार की कला यह है कि वह अपने दृश्यपटो और घरो को विचारो से शून्य न रहने दे, साथ ही उसे अपनी भावनाओ और घटना-क्रमो के लिए आवश्यकता से अधिक वडी इमारतो का भी सहारा न लेना चाहिए। इस दृष्टि से वालजाक के वर्णन काफी सारगर्भित हैं, किन्तु बहुत अधिक नही। इन वर्णनो के वारे में सवसे पहली वात तो यह ध्यान में रखने की है कि उनके सभी हिस्से विचारो के द्वारा जुडे हुए होते हैं, गद्य की इमारत इसी प्रकार चुनी जाती है। देखकर ऐसा मालूम होगा मानो वहा विचार हर जगह घर कर लेना चाहता है, जब कि कविता में यही काम लय के द्वारा सम्पन्न होता है, कारण कि लय विभिन्न अशो को सम्बद्ध रखती है। इसका मतलब यह कि वर्णन का प्रत्येक अश अपने-आप में युक्ति-सगत होना चाहिए, ताकि विचार का सूत्र इन अशो को एक-दूसरे से जोड सके। और इस सिलसिले में केवल रूप का सतही परिचय देने वाले अन्य कतिपय साहित्यिक चित्रो से—जैसे *सलाम्बो* में कार्थेज के चित्र से—वालजाक या स्टैण्ढाल के वर्णनात्मक विश्लेषण की तुलना करना उपयोगी होगा। गद्य की प्रत्येक इमारत में, प्रथमत, विचार सीमेंट-चूने का काम करता है। इसी प्रकार गतिशील छवि-चित्र एक दूसरे से बधे या किसी एक केन्द्रविन्दु के चारो ओर केन्द्रित रहते हैं। यहा यह कहा जा सकता है कि विचार ही शरीर और पदार्थ का निर्माण करता है। यदि पाठक प्रतिरोध करता है तो उस समय जव विचार उसे हवा में तैरते प्रतीत होते हैं जो वस्तुत कुछ नहीं पकड पाते। मानना पडेगा कि आलेन्कोन या वेरियर जैसे नगरो का सजीव चित्र देने में स्टैण्ढाल या वालजाक को कोई भी भूगोल-लेखक मात नही कर पाया है।

"यह वात ध्यान देने योग्य है कि इन वर्णनो में आरम्भ में कल्पना का कोई प्रवेश नही होता, वे कुछ रूखे मालूम होते हैं, उनमें आपको केवल निष्कर्ष ही मिलते हैं। वाद में ही, कथा-प्रवाह के दौरान में, चीजें दिखाई देती हैं—इस तरह नही कि उनका नुमाइशी प्रदर्शन

किया जा रहा हो, बल्कि वे कर्मरत मानव के चारो ओर एकत्र होते, प्रकट होते और विलीन होते हुए दिखाई देते है।"

स्त्रियो और पुरुषो के बारे में अपने विचार लेखक शब्दो के द्वारा व्यक्त करता है। शब्द ही उसकी कच्ची सामग्री है। वह सोचता जाता है और लिखता जाता है, और उसके विचारो का तर्कबद्ध सिलसिला व्यवस्थित कथोपकथन और वाक्यों के रूप में प्रकट होता है। शैली, गद्य की लय, तथा गुलकारियो आदि के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। मैं उसमें और वृद्धि नही करना चाहता, सिवा यह कहने के—और शायद यह भी एक जानी-पुरानी बात ही है—कि ऐसी कोई जीवित शैली नही है जिसमें शब्द और विचार की अनुकूलता का अभाव हो, और यह कि रोमाण्टिक विचार के लिए रोमाण्टिक शैली की तथा यथार्थवादी विचार के लिए, सीधे-सादे "गद्य" विचार के लिए, एक सीधी-सादी यथार्थवादी शैली की दरकार होती है। जबरदस्ती किसी शैली की रचना करने के प्रयत्न मे या विचार की जगह अलकारिता से काम लेने से अधिक झुझलाहट पैदा करने वाली चीज और कोई नहीं हो सकती। किन्तु, दुर्भाग्यवश, यह मानना पड़ेगा कि ऐसे समय जब विचार कठिन, दुखद या अरुचिकर हो जाता है, तब बनावटी शैली के प्राधान्य प्राप्त करने की सभावना भी ज्यादा रहती है। जीवनी-लेखन की एक आधुनिक "कला" में इस सच्चाई की (अमरीकी विधान की धाराओं की भाति जिसे हम स्वयसिद्ध समझते हैं) जितनी बढिया मिसाल मिलती है, वैसी कहीं और नही मिल सकती। यह कला विचारतत्व से एकदम शून्य, शुरू से अन्त तक बनावटी, और इसीलिए बेहूदगी की चरम सीमा तक "शैली की चमत्कारिता" में डूबी हुई है।

अभिव्यक्ति का सबसे बडा जखीरा हर जाति की लोक-भाषा में मौजूद है। न ही इस भाषा को आज तक किसी ने मरते सुना है, यों सशोधन उसमें बराबर होता रहता है। आप यह बखूबी कह सकते हैं कि महानतम लेखकों के बारे में यह कहना कठिन होता है कि उन्होने मुहाविरेदार भाषा को सचमुच गढ़ा है या मुहाविरेदार भाषा का उपयोग

मात्र किया है। फिर भी, चौसर से शेक्सपीयर और फिर शॉ तक हमारे महानतम लेखको ने मुख्यत इसी लोकप्रिय, करीब-करीब मुहाविरेदार भाषा को ही अपनाया है। शास्त्रीय आलोचको तथा साहित्य के इतिहासकारो ने इस धारणा को लगभग आम बना दिया है कि बाइबल का अग्रेजी सस्करण ही हमारे लगभग समूचे गद्य साहित्य का प्रेरणास्रोत रहा है। किन्तु, जहा तक मुझे मालूम है, अब तक इस तथ्य का किसी ने अध्ययन नही किया कि बाइबल का यह सस्करण किस हद तक केवल एलिजाबेथ युग की प्रचलित अग्रेजी लोक-भाषा मे ही लिखा गया है। इसमें सदेह नही कि बाइबल की भाषा आज दिन भी बहुत कुछ आम लोगो की भाषा के पद पर आसीन है, और मिल्टन तथा *पिलग्रिम्स प्रोग्रैस* के साथ मिलकर वह इतने बडे पैमाने पर उनकी साहित्यिक विरासत बन गयी है कि जिसकी हमारे देश के उच्च वर्ग कभी दावा नही कर सकते।

भाषण और अभिव्यक्ति की यह समृद्धि हमारे देश मे अब पहले जैसी नही रही, किन्तु उसमें कुछ तो अमरीका के ससर्ग से और कुछ जीवन के अनुभव से नये प्राणो का सचार हो रहा है, इसमें भी सन्देह नही। हमारे आधुनिक लेखन का यह पीलापन और रक्तशून्यता बहुत कुछ इस तथ्य के कारण है कि कतिपय बुद्धिजीवियो ने अपने आपको नवजीवन के इस चिरन्तन स्रोत मे जानबूझ कर इस हद तक अलग कर लिया है कि वस्तुत प्राणवान भाषा लिखने वाले गिनेचुने आधुनिक लेखको मे एक किपलिग (अन्य कारणवश उनके बारे में हमारी राय चाहे कुछ भी हो) का ही यहा उल्लेख किया जा सकता है। किपलिग इग्लैण्ड और अमरीका की लोकभाषा में पगे थे, और उसके नवीनतम तथा अत्यत आधुनिक रूपो को—उन रूपो को जिनकी शक्ति-चालित मशीनो के विकास के इर्दगिर्द पनपती नयी लोक-प्रिय दतकथाओ में अभिव्यक्ति हो रही थी—अपनाने में जरा भी नही झिझकते थे। अच्छा गद्य लिखने की कला चीजों को उनके सही नाम से पुकारने की विलुप्त कला है, एक ऐसी शक्ति है जिसने कटघरे

मे खड़े दिमित्रोव की वाणी को इतना बलशाली बना दिया था। यह एक सत्य है, अडिग और अप्रिय सत्य, कि हमारे देश में अब भी ऐसी क्षमता रखनेवाले लोग अदबदा कर केवल मेहनतकश ही हैं, क्योकि वे जीवन के आवश्यक अनुभव तथा शब्दो के भण्डार से सम्पन्न हैं और उसमें वृद्धि करते रहते हैं। अमरीका के कितने ही लेखक अपने देश में इस सत्य को स्वीकार कर चुके हैं, और इसका यह परिणाम है कि तथा-कथित "पहुचे हुए" पथ की कृतियो में, उनके तमाम दोषो के बावजूद, कुछ ऐसी चीज की रचना हुई है जो हमारे अग्रेज लेखको के मुकाबले में एक सजीव कला और सजीव शैली के कही अधिक निकट है।

चीजो को उनके असली नाम से पुकारने वाला अन्तिम अग्रेज लेखक विलियम कौवेट था, जिसमें मानो यह कला कुदरती तौर पर मौजूद थी। यह अद्भुत व्यक्ति, मार्क्स के शब्दो में, "ग्रेट ब्रिटेन का सबसे पुरातन-पन्थी और सबसे उग्र व्यक्ति—पुराने इग्लैण्ड का सबसे सच्चा अवतार और युवा इग्लैण्ड का सबसे साहसी अग्रज था।" आशा है कि पाठक इस गद्य के, जिसकी खूबी यही थी कि वह चीजो को उनके सही नाम से पुकारना जानता था, निम्न दो उदाहरणो के उद्धरण के लिए मुझे क्षमा करेंगे। ये कौवेट के लिन्कनशायर के वर्णन मे लिए गए हैं

"अनाज और घास और बैलो और भेडो के इस प्रदेश में, एक छोर से दूसरे छोर तक, एक कमी है और मेरी समझ में यह एक बडी कमी है, जिसे मैं पिछले तीन सप्ताह से अनुभव कर रहा हू। यह कमी है—*गाने वाले पक्षियों* की अनुपस्थिति। ठीक इसी ऋतु में वे सबसे अधिक गाते हैं। यहा, इस समूचे प्रदेश में, केवल चार-एक लवा पक्षियो को मैंने देखा और सुना है, अन्य किसी किस्म का एक भी गाने वाला पक्षी नजर नही आया और छोटे पक्षियों में, जो गाते नही, मुझे केवल एक *येल्लो हैमर* दिखाई दिया, और वह भी वोस्टन तथा सिवसे के बीच एक काजी-हाउस के बाडे पर बैठा था। ओह, सर्रे के रेतीले टीलो के बीच एक ही पेड पर हजारो *लिन्नेटों* का एक साथ मिलकर चहचहाना! ओह, हैम्पशायर और ससेक्स और कैण्ट की झाडियो और घाटियो मे

पक्षियो का वह आनन्दपूर्ण कलरव ! इस वेला में (सुवह के पाच बजे) वार्न-एल्म के झुरमुट हजारो-हजार पक्षियो के गान से गूज रहे होगे। *थूश* पक्षी पौ फटने से कुछ पहले ही गाना शुरू कर देता है, फिर *ब्लैकबर्ड* अपना स्वर मिलाता है, इसके वाद *लवा* भी उडानें भरना शुरू कर देते हैं, सूर्य के सकेत पर वाकी तमाम पक्षी गाना आरम्भ कर देते हैं, और झुरमुटो से, झाडियो से, पेडो की वीच की और सवसे ऊपर की टहनियो से, अनन्त किस्म के गान सुनाई देने लगते हैं, लम्बी सूखी घासो से *ह्वाइट-थ्रोट* या *नेटल-टर्न* की मीठी और मुलायम आवाज आती है, और लवा का (आखो से ओझल गायक का) जोरदार तथा आल्हादपूर्ण गान आकाश से नीचे की ओर तिरता प्रतीत होता है।"

जब कौवेट किसी देहात का — जिसके वीच से वह गुजर रहा हो — वर्णन करता है तो धरती के आकार तथा उसके रेशो की वनावट तक का चित्र आखो के सामने मूर्त्त हो उठता है, किन्तु वह अपने अग्रेजी दृश्यपट के किसी एक हिस्से का — गाते हुए पक्षियो, लिन्कनशायर के खुले प्रदेशो, देहाती चौपाल में किसानों की पचायत अथवा यौर्कशायर में घोडो के मेले का — इस चेतना के विना कभी वर्णन नही करता कि ये चीजें मानव के जीवन का हिस्सा हैं और यह कि मानव के जीवन के साथ यह सम्वध ही उन्हे उनका सौन्दर्य और सार्थकता प्रदान करता है। यही वह चीज है जो उसे हडसन और जैफरीस जैसे प्रकृति का वर्णन करने वाले लेखकों से अलग करती है। कौवेट की अग्रेजी भाषा कौवेट के इग्लैंड की देन है।

"हन्टिगडनशायर के खुले देहात में सेइन्ट आइव्स के कस्वे में जब मैं गया था, तो मैं किसानो के साथ वैठा, और मानो साध्य-प्रार्थना की तैयारी में मैंने पाइप के दम लगाये। साध्य-प्रार्थना मैंने गाडी के पहिये वनाने वाले एक वढई की तिपाई पर सम्पन्न की। मेरे मित्र, साग खेलने वाले मोटे-मासल चौपायो की इस वडी मडी में — जहा फेन्स से माल आता था और वेन के लिए लाद दिया जाता था — कोई निय-

मित अड्डा नही जमा पाये थे। अभी हम बैठे हुए थे कि एक इश्तहार मेज के चारो ओर घूम गया। यह *खेती* के *सामान* की बिक्री का विज्ञापन था, और खेती के औजारों की जो सूची उसमें दी हुई थी, उसमें 'आग बुझाने का एक बढिया इजन, लोहे के कई फदे और स्प्रिंगदार बन्दूकें' भी मौजूद थी। क्यो, एक अग्रेज *किसान* के जीवन का क्या यही चित्र है? होल्वीच से बोस्टन को जाने वाली सडक पर घूमता हुआ मैं करीब छै मील आगे निकल गया। यहा की धरती की अकूत निधियो का मैंने पहले भी अवलोकन किया है। करीब पौने छै मील तक चलने के बाद मै एक ढाबे में पहुचा। मैंने सोचा कि यहा कुछ नाश्ता मिल जायगा। किन्तु उस गरीब औरत के पास जो बच्चे-कच्चों के एक अच्छे-खासे काफिले से घिरी थी, मास या रोटी का एक निवाला तक नही था। कुछ और आगे चल कर एक घर में, जो सराय कहलाता था, सराय के मालिक के पास मास के नाम पर सुअर की रीढ के एक छोटे से टुकडे के सिवा और कुछ नही था, और हालाकि उस जगह काफी सख्या में घर मौजूद थे, सराय के मालिक ने बताया कि यहा के लोग इतने गरीब हो गए हैं कि आस-पास के कसाइयों ने मास के लिए पशुओं का वध बद कर दिया है। क्रान्ति से पहले फ्रान्स की भी ठीक ऐसी ही हालत थी। उसी जगह पर खडे-खडे मैंने अपने चारो ओर नजर डाली और चरागाहो में दो हजार से अधिक मोटी-ताजी भेड-बकरियों को चरते देखा। हे मेरे भगवान! आखिर कब तक, कितने दिनों तक, यह स्थिति रहेगी? कितने दिनों तक बहुतायत होते हुए भी इन लोगों को भूखो मरना पडेगा? और ऐसी स्थिति में, आखिर कितने दिनो तक, स्प्रिंगदार बन्दूकें, लोहे के फदे और आग बुझाने के इजन सम्पत्ति के रक्षक बने रहेंगे?"

मुझे भारी सशय है कि कौबेट शुद्ध कलाकार नहीं था, किन्तु जिस भाषा में वह लिखता था वह असाधारण रूप मे शुद्ध गद्य मालूम होती है, जिसमें शब्द और विचार की सुखद सगति इतनी पूर्णता के साथ मौजूद है कि पाठक उगली उठाने की बात कभी सोच तक नहीं सकता। किन्तु यह तो बीते दिनो की बात है। गद्य की यह कला हमारे

अपने युग में मरणासन्न हो रही है। कारण कि चीजो को उनके सही नाम से पुकारने के लिए आपके हृदय में उन चीजो के प्रति कोई डर नहीं होना चाहिए जिनका कि आपको वर्णन करना है। साथ ही यह भी जरूरी है कि आप अपने और उनके बीच कोई दीवार न उठने दें। कौबेट गद्य को कुछ और समझता था, बी बी सी[1] उसे कुछ और समझता है। कौबेट जीवन को व्यक्त करने के लिए भाषा का उपयोग करता था, बी बी सी उसका उपयोग जीवन को छिपाने के लिए करता है।* सैनिक-किसान कौबेट के अंग्रेजी लहजे में हार्दिकता, अनुराग और समझदारी का पुट होता है (साथ ही उस आम अनुभूति या समझ का भी जो कि हमारे जीवन की आम चीजों के साथ घनिष्ट सम्पर्क से पैदा होती है)।

पोर्ट लैण्ड प्लेस[2] के भद्र पुरुषो की क्षीण वाणी में न भावो का पता चलता है, न अनुराग, विचार या संवेदनशीलता का। जीवन की परिचित तथा प्रिय चीजो का कोई भी प्रतिविम्ब उसमें नही दिखाई देता, केवल उन हौवों और भुतनो की पतली छायाए नजर आती हैं जिन्हें हमारे आधुनिक शासको ने उक्त चीजो के बदले अपने दिमागों में खडा कर लिया है। शायद यह तुलना अनुचित है। अब और क्या कहें, हालाकि यह एक दुखद सत्य है कि कौबेट से लेकर आज तक हमारी भाषा का विकास बी बी. सी के इसी रक्तशून्य, दोषरहित आदर्श की दिशा में हुआ है। यह विकास सत्य के प्रति उस भय से सीमित और कुण्ठित रहा है, जो कि हमारे वर्ग-समाज के बौद्धिक जीवन की अत्यत उल्लेखनीय विशेषता है। यदि हमें चीजो को उनके नाम से पुकारना फिर शुरू करना है तो हमें काफी जमीन तय करनी होगी और

---

* यहा मै खास तौर से उस असाधारण सूची का उल्लेख करना चाहूगा जिसमें उन विषयों के नाम गिनाए गए हैं जिन पर रेडियो से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी सूची में वे शब्द भी हैं जिनका रेडियो से प्रयोग वर्जित है। यह सूची बी बी सी के समूचे जीवन की पथ-प्रदर्शिका है। निषेधों की इसी सूची से अधिकांश समाचार-पत्रों के कार्यालयों में भी काम लिया जाता है।

साहित्य के पण्डितो से अत्यन्त भोंडे युद्ध में उलझना पडेगा। विक्टर ह्यूगों और कीट्स के सघर्ष इसके सामने निस्सन्देह बहुत मामूली दिखाई देंगे। इसी के साथ-साथ अपनी भाषा में नये रक्त का सचार करने के लिए हमें अपनी समूची मौलिक सूझबूझ और रचनात्मक क्षमताओ से काम लेना पडेगा। हो सकता है कि इस दिशा में कवि सबसे अग्रणी सिद्ध हों। यदि ऐसा है तो उनका स्वागत है। आइए, हम सब मिलकर सघर्ष करें और यह विचार हमें प्रेरणा दे कि हमारी भाषा का भाग्य और उसे विकसित करने के सघर्ष में और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए हमारे देश के सघर्ष में अतीत में सदा एक अत्यत घनिष्ट सम्बध रहा है।

बारह

सांस्कृतिक विरासत

लेखक और जनता के बीच एक विचित्र और पेचीदा सम्बध है। यह केवल लेखक और पाठक का ही सम्बध नही है, बल्कि इससे कही बडी चीज है। कारण कि जनता में विभिन्न श्रेणियो, विविध हितो, अनुराग-आकाक्षाओ और विभिन्न बौद्धिक स्तर वाले सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष होते हैं। यह जनता (चाहे वह ऊपर से देखने में कितनी ही उदासीन और निष्क्रिय क्यो न लगती हो) प्रचण्ड वर्ग सघर्षो, राष्ट्रीय और जातीय पूर्वग्रहो तथा मानवता के जीवन में अपनी अनिवार्य गति से आगे बढते हुए इतिहास की विरासत से आन्दोलित होती रहती है। जनता के बीच से ही लेखक अपने पात्रो को लेता है और उसके पाठक भी जनता के बीच में ही मिलते हैं। अपनी कच्ची सामग्री भी वह इसी से प्राप्त करता है और उसके आलोचक भी इसी में से पैदा होते हैं। महान उपन्यासो में सृष्टा, पात्रों और पाठको के बीच एक प्रकार की सजीव एकता होती है। जहा यह एकता नही होती, जहा लेखक अपनी जनता से पृथक होता है, उसकी उपेक्षा करता है या लेखक की आत्मा इस मामले में अचेत होती है, वहा रक्तशून्यता की सम्भावना भी सर्वाधिक रहती है। ऐसा मालूम होता है मानो कल्पना के रसायन में किसी महत्वपूर्ण तत्व का अभाव है जिसने लेखक के चिन्तन को खोखला या उसकी शक्तियो को पगु बना दिया है। किन्तु, कहने की आवश्यकता नही कि, ऐसा हमेशा या अनिवार्य रूप में नही होता। स्टेण्ढाल की मिसाल हमारे सामने है।

हम जानते हैं कि वह, सजग और सचेत रूप में, एक ऐसी जनता के लिए लिखते थे जिसे अभी जन्म लेना था, जो यह मानते थे कि उनकी अपनी पीढी के लोग न तो उन्हे समझ पाएगे, और न ही उनकी सराहना कर सकेंगे।

अपने निजी जीवन में लेखक चाहे कितना ही भीरु और ढुलमुल जीव क्यो न हो, किन्तु जहा तक उसकी कला के पात्र के रूप में जनता के साथ उसका सम्बध है, उसे हैनरी द्वितीय और तैमूरलग का मिश्रण होना चाहिए — एक निर्मम स्वामी और विजेता, अपनी इच्छा के आगे सबको झुकाने वाला। साथ ही इसका मतलब यह भी है कि अत्यत निरकुश आततायी भी उसी हालत में असली स्वामी, इतिहास का निर्माता, बन सकता है जबकि वह इतिहास की गति को समझता हो, जबकि उन अदृश्य प्रक्रियाओ के प्रति उसमें गहरी सवेदनशीलता हो जो लोगो के जीवन को ढालती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि लेखक अपनी जनता को जाने, लोगो के साथ वह उतना ही घनिष्ट हो जितना घनिष्ट कि एक ही मेज पर नित्य चाय पीने वाले होते हैं, स्त्रियो को वह अपनी महबूबा के समान और बच्चो को वह अपने ही मुन्नू-चुन्नू समझे। इतिहास के अत्यत रगीले आततायी भी, ऐसे लोग जो भगवान की तरह अलग-थलग रहकर मानो आसमान से शासन करते थे, रात के अधेरे में भेष बदल कर (लोक कथाओ के अनुसार) अपनी रियाया में हमेशा विचरण करते थे। जो लेखक ऐसा नही कर सकता वह शुरू से ही अपने हाथ-पाव कटा लेता है, या अगर वह जीवन का एक गलत चित्र छपाने की बेहूदगी करने से बाज नही आता तो इतिहास उसे भी उसी प्रकार कूडे के ढेर पर फेंक देता है, जैसे कि उसने असफल निरकुश शासकों को सदा फेंका है।

इस सृजनात्मक सहयोग को पूर्णतया कारगर बनाने के लिए केवल सहानुभूति ही काफी नही है। देखा जाए तो सहानुभूति के अलावा, लेखक को इतिहास के ज्ञान से भी लैस होना चाहिए, उसे इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने राष्ट्र की सास्कृतिक विरासत का उपयोग कर सके, ठीक वैसे ही जैसे कि जनता राजनीतिक विरासत को उपयोग

में लाती है।* सच तो यह है कि ये दोनों एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप में गुथी हैं। अपने सास्कृतिक अतीत को तिलाजलि देकर कोई भी जाति इतिहास में अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकती, वैसे ही जैसे कि राजनीतिक अतीत को छोडने पर वह अपनी भूमिका अदा नही कर सकती। वह लेखक जो अतीत की सस्कृति से जीवित परम्परा को न लेकर सौन्दर्यानुभूति के रूप में केवल जीवन-शून्य प्रेतात्माओ की विरासत सभालता है, स्वय अपने लक्ष्य के साथ धोखा करता है। सो यह बात भी ठीक ही है, जैसा कि मैंने इस निवन्ध में शुरू से अन्त तक जोर देकर कहा है, कि महान लेखक ऐमे व्यक्ति नही होते जो अपने काल के सक्रिय जीवन से उदासीन रहते हो। शैक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटको में

परम्परा और विरासत के इस प्रश्न पर मि टी एस इलियट ने तपोवन में कुछ दिलचस्प दलीलें दी हैं जिनसे मैं पूर्णतया सहमत नहीं हो सकता। उनका सुझाव है कि लेखक मे एक इतिहास-चेतना का होना जरूरी है जो उमे लिखने के लिए बाधित करे "न केवल खुद अपनी पीढी को अपनी हड्डियों मे समोकर ही, वल्कि इस भावना के साथ भी कि होमर से लेकर युरोप का ममग्र साहित्य और उसके अन्तर्गत उसके अपने देश का समग्र साहित्य भी उमके माथ-साथ अस्तित्व रखता और एक सम-व्यवस्था की रचना करता है।"

यह केवल आशिक रूप मे सत्य है। कारण कि वर्तमान से बाहर अतीत का कोई अर्थ नहीं है और प्रत्येक वर्तमान अतीत को अपनी कसौटी पर परखता है। आलोचक के लिए जो बात सबसे अधिक महत्व की है वह यह कि यह परख कैमे की जाती है। किन्तु मि इलियट ने परम्परा के वारे में अपने जिस दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह तत्वत निष्क्रिय है। "कोई भी कवि, किसी भी कला का कोई भी कलाकार, अकेले अपने-आप में पूर्ण रूप से सार्थक नहीं होता। उसका महत्व, उसकी सराहना, मृत कवियों और कलाओं के साथ उसके सम्वध की सराहना है। अकेले अपने-आप में उसका मूल्याकन नहीं किया जा सकता, मुकाबले और तुलना के लिए उसे मृतकों के बीच स्थापित करना होगा।"

अतीत और वर्तमान—दोनों के प्रति निश्चय ही यह एक कुत्सित व्यवहार है। यदि इन दोनों के बीच कोई जीवित सम्वध है तो यह "मुकाबले और तुलना' का सम्वध नहीं है। यह सच है कि हम प्रत्येक कवि को सम्पूर्ण के एक अश के रूप में ही परखते हैं, किन्तु एक ऐसे अश के रूप में नहीं, जिसे उसकी विरामत ने वाध कर निरा निष्क्रिय वना दिया है। कवि या उपन्यासकार मृत सम्पत्ति का

राजनीति में उनकी गहरी दिलचस्पी का प्रमाण मिलता है। मिल्टन ने, पाप और पुण्य के सघर्ष का महाकाव्य लिखने के अतिरिक्त, हमारे इतिहास की महानतम क्रान्ति में भी हिस्सा लिया था और अपनी गद्य-कृतियों में ऐसे राजनीतिक सिद्धान्तों को विकसित किया था, जिनकी यदि हम उपेक्षा करेंगे तो नुक्सान ही उठाएगे। फील्डिग मजिस्ट्रेट थे—गरीबो तथा उत्पीडितो के रक्षक और हृदयहीन न्याय-प्रणाली के सुधारक। प्रथम और महानतम रोमाण्टिक कवि बायरन ने चाइल्ड हैरॉल्ड लिखने के अलावा लार्ड सभा में लुड्टिटो पर भाषण भी दिया था। और वर्ड्‌सवर्थ ने लिखा था "मृतको और जीवितों को एक आध्यात्मिक सपर्क एकता के सूत्र में बाधे हुए है। सभी युगों के नेक, वीर और बुद्धिमान इसमें शामिल हैं। हम इस बिरादरी से विलग होना स्वीकार नही करेंगे।"

उत्तराधिकारी नहीं है। वह अतीत का उपयोग करता है—न केवल खुद अतीत को ही बदलने के लिए (अपनी निजी उपलब्धियों द्वारा), बल्कि वर्तमान को भी बदलने के लिए। सस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे हमें जीवन के अमल को गहरा बनाने के काम में लाना है। वह केवल सौन्दर्यानुभूति में डूबने-उतराने की चीज नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि मि इलियट इस बात को आंशिक रूप से समझते है। कारण कि अपनी भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि शैक्सपीयर के मुक़ाबिले में दान्ते को अधिक पसन्द करने के परिणामस्वरूप उन्हें सस्कृति को जीवन के एक ऐसे सक्रिय अंग के रूप में देखना पड़ता है जिसमें नैतिकता, धर्म और राजनीति का भी प्रवेश है। प्रत्येक नयी कृति—"परम्परा" शीर्षक अपने लेख में लिखते हुए मि इलियट ने दलील दी है—अतीत की कृतियों की समूची मौजूदा व्यवस्था को, चाहे कितने ही आशिक रूप में क्यों न हो, बदलती है। बिल्कुल ठीक, किन्तु वे कौन सी शक्तिया हैं जो इस परिवर्तन के पीछे हैं? यह परिवर्तन किस प्रकार होता है?

हम अतीत को उसी रूप में परखते हैं जिस रूप में कि हमें जीवन उसे परखने के लिए बाध्य करता है, और हमारा यह जीवन न केवल हमारी विरासत से हो, बल्कि हमारे अपने समय के वर्ग-सघर्षों तथा आवेगों-आवेशों से भी निर्धारित होता है। प्रत्येक नयी कृति में होनेवाले परिवर्तन भी इन्हीं ताकतों से निर्धारित होते हैं। हम केवल अतीत को ही नहीं देख सकते। हमें पहले वर्तमान को देखना है, जो सदा परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजरता रहता है।

इग्लैंड की पार्लिमेंट के नाम "विना लाइसेन्स के मुद्रण की स्वतत्रता" के लिए मिल्टन के भाषण के शब्द इग्लैंड के जीवन का अग वन चुके हैं। इस भाषण में उन्होने यह वताया था कि हमारी जाति की महानतम विरासत क्या है

"यदि इस तमाम स्वतत्र लेखन और स्वतत्र भाषण का फौरी कारण जानना चाहे, तो इसके लिए आपको स्वय अपनी सहिष्णु तथा स्वतत्र, और मानवीय सरकार से अधिक सच्चा कारण अन्य कोई नही मिलेगा, लार्ड्स-सभा और लोक-सभा के सम्मानित सदस्यो, यह वही स्वतत्रता है जिसे स्वय आपकी साहसपूर्ण तथा शुभ चेष्टाओं ने हमारे लिए प्राप्त किया है, वह स्वतन्त्रता है जो तमाम महान विभूतियो की पोषक है, इसी ने हमारी आत्माओ को इतना स्वच्छ और आलोकमय बना दिया है कि लगता है जैसे हम स्वर्ग में पहुच गए हो, इसी ने तो हमारी समझ को मुक्त किया, उसे विस्तार दिया और पहले से कही अधिक ऊचा उठाया। अब आप हमें कम क्षमताशाली, कम जानकार, कम लगन से सत्य की खोज करनेवाले नही वना सकते, जब तक कि आप स्वय, जिन्होने हमें ऐसा वनाया है, हमारी सच्ची स्वतत्रता से प्रेम करना छोड नहीं देते और उसके सस्थापक होने से इन्कार नही करते। हम फिर वैसे ही अज्ञानी, पशुवत, दिखावटी और दासवृत्ति से युक्त हो जाएगे, जैसाकि आपने हमें पाया था। लेकिन इसके लिए पहले आपको भी वैसा ही वनना पडेगा जैसाकि आप बन नही सकते—उत्पीडक, निरकुश और दमनकारी, जैसा कि वे लोग थे जिनसे कि आपने हमें आजाद कराया था। यदि आज हमारे हृदय अधिक विशाल हैं, हमारे विचार महानतम और एकदम खरी चीजो की खोज तथा आशा में अधिक सलग्न हैं, तो यह स्वय आपके ही गुण का फल है जिसका हममें प्रतिपादन हुआ है। आप इसका तबतक दमन नही कर सकते जब तक कि आप इस निषिद्ध और निर्मम कानून को फिर से लागू नही करते कि पिता जब भी चाहे अपने वच्चो का काम-तमाम कर सकते हैं। और तब आपके साथ कधे-से-कधा मिलाकर कौन खडा होगा, और दूसरो को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करेगा? निश्चय ही वह नही, जो राजचिन्ह और धर्म तथा डेनगेल्ट के अपने चार

श्रीमन्तो[1] के लिए हथियार उठाता है। हालांकि मैं न्यायसगत विशेषाधिकारो की रक्षा की निन्दा नही करता, फिर भी यदि बात इतनी ही है तो मुझे अपनी शान्ति अधिक प्रिय है। सभी स्वतन्त्रताओ से ऊपर मैं आत्मा के अनुसार जानकारी पाने, बोलने और उन्मुक्त होकर बहस करने की स्वतन्त्रता चाहता हू।"

देवी एथेन की भांति स्वतत्रता इस दुनिया में पूर्णतया हथियारो से लैस होकर पैदा नही हुई थी। वह इतिहास की सुदीर्घ और कष्टकर प्रगति का, उसके अनेक दौरो का, अनेक क्रान्तियो और आकस्मिक परिवर्तनों का, परिणाम है। मिल्टन ने उस समय अपनी आवाज बुलन्द की थी जबकि हमारा इतिहास एक सकट का सामना कर रहा था, जब कि स्वतत्रता ने एक भारी छलाग लगाई थी, जबकि सम्पत्ति के एक रूप की स्वार्थपरता और कट्टरता को भग करना था, क्योकि वह हमारी भौतिक और साथ ही बौद्धिक प्रगति को जकडे हुए थी। "राजचिन्ह और धर्म तथा डेनगेल्ट के अपने चार श्रीमन्तो" के लिए हथियार उठाने वाले व्यक्ति की स्वार्थपरता चकनाचूर हो चुकी थी, किन्तु उसके बदले सम्पत्ति के एक अन्य स्वरूप ने, घिनौनी अहमन्यता ने, उसकी जगह ले ली थी जो अब, हमारे अपने समय में, हमारी प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हो हो रही है, एक जजीर की तरह जिसने हमारे मस्तिष्को को जकड रखा है और स्वतत्रता की हमारी विरासत के और आगे विकास को आतकित कर रही है। मिल्टन के समय से एक राष्ट्र के रूप में हमारा विकास हो गया है और हमारा इग्लैंड भी तब से बहुत कुछ बदल गया है। लेकिन अब वह समय आ गया है जबकि मिल्टन के वशज यह मानने के लिए बाध्य हैं कि आर्थिक दासता और राष्ट्रीय ह्रास एक-दूसरे के साथ गुथे हुए हैं, इन्हें एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है, तो स्वतन्त्रता को एक छलाग आगे और लगानी होगी।

इस आशका के बावजूद कि कही आप मुझ पर एक ऐसा राजनीतिक सबक पढाने का दोषारोपण न करने लगें जिसका, ऊपर से देखने पर, मेरे केन्द्रीय विषय से कोई वास्ता नही दिखाई देता, मैं पाठको को हमारे इतिहास की दो अत्यत दुखद घटनाओं की याद दिलाना चाहूगा जो

१९३६ के इसी साल में घटी हैं। मैं चाहूगा कि पाठक देखें कि हम
राष्ट्रीय जीवन को ये घटनाए कितनी गहराई तक प्रभावित करेंगी। ऐ
करने पर, मेरा विश्वास है कि, उनकी समझ में आ जाएगा कि
प्रकार की राजनीतिक घटनाओ और राष्ट्रीय दृष्टि के सारतत्व के वं
वहुत ही वास्तविक सम्बध है, और हमारी यह राष्ट्रीय दृष्टि ही है
लेखक की कल्पना को रगती है।

१९३६ में ब्रिटेन की सरकार ने, जो कि हमारी जनता के भा
तथा हमारी राष्ट्रीय विरासत की सरक्षक है, ऐसे दो दु.खद लडाइयो
अपने आपको फसा लिया है जिनमें विदेशी साम्राज्यवादी हित ब्रिटेन
शाही हितों को आतकित करते हैं। पहली घटना एवीसीनिया पर इट
का सैनिक आक्रमण[1] था। इसमें शुरू में ढुलमुल ढग से कुछ विरं
करने के वाद अन्त में ब्रिटिश सरकार ने, वेशर्मी के साथ, अपनी आ
मूद ली और एक मित्र देश के साथ वलात्कार होने दिया। इस प्रक
इटली की फासिस्त निरकुशता ने पूर्वी भूमध्य सागर में भारी स
स्थापित कर ली और पूर्व के साथ ब्रिटेन के यातायात मार्ग में वा
खडी हो गयी। दूसरी घटना स्पेन से सम्वध रखती है। वहा की कानू
तथा जनतान्त्रिक सरकार के विरुद्ध जनरलों और सिद्धान्तहे
फासिस्त प्रतिक्रियावादियो के एक दल ने विद्रोह करके उस देश
आजादी और हाल ही में प्राप्त स्वतन्त्रता को (जर्मन और इताल्वी प्रां
क्रियावाद से एक कीमत पर प्राप्त सहायता के द्वारा) खतरे में डाल दि
था। हमारी सरकार ने, इस मामले में भी, हिचकिचाहट और ढुलमु
यकीनी का परिचय देते हुए, स्वतन्त्रता के पक्ष का समर्थन करने के वजा
प्रतिक्रिया की ही पीठ ठोकी। परिणाम इसका यह कि भूमध्य सागर
पश्चिमी द्वार पर हमलावर जर्मन तथा इताल्वी साम्राज्यवाद ने पा
जमा लिए।

इन दोनों ही मामलो में सरकार ने सकुचित वर्ग चेतना से उत्प्रेरि
होकर काम किया, जिससे वह स्वय अपनी जनतान्त्रिक जनता से दूर औ
विदेशी निरकुशता के निकट जा पहुची। उसने ऐसा काम किया
राष्ट्रीय हितों के खिलाफ था और जो, अन्ततोगत्वा, भारी सम्पत्ति

स्वामियो के उस छोटे वर्ग के शाही हितो के भी खिलाफ था जिसका वह प्रतिनिधित्व करती है (इसका यह अर्थ नही कि राष्ट्रीय हित व साम्राज्य वादी हित एक समान हैं—नही, वे कतई समान नही हैं)। यह सोचना असगत नहीं कि स्पेन की घटनाए अग्रेजी दिमागो में ऐतिहासिक स्मृतियो को जगा दें। हमारी सेना की पताकाओ पर वर्तान्वी रक्त से सिंचित उस आईवेरियन प्रायद्वीप के कितने ही नगरो व गावो के—सलामान्का, वादाजोज, विट्टोरिया, अल्वुएरा, तालावेरा तथा अन्य के—नाम अंकित हैं। हमारे इतिहास की महानतम समुद्री लडाई केप ट्राफलगर के पास लडी गयी थी। ब्रिटिश शस्त्रो का वह महानतम सैनिक अभियान, जो कि हमारे इतिहास का अन्तिम अभियान था, जिसमें हमने विजय और गौरव दोनो ही प्राप्त किये थे, समान अनुपात में साहस और सैनिक प्रतिभा का जिसमें हमने परिचय दिया था, एक दुस्साहसी तथा सिद्धान्तहीन निरकुश-शाही के खिलाफ स्पेनी स्वतत्रता की स्थापना के लिए था। स्पेनी स्वय-सेवको की पातो में स्पेनी जैकोविन—स्पेन के क्रान्तिकारी—हमारे साथ कधे से कधा मिलाकर लडे थे।

कवि वर्ड्सवर्थ ने अपनी कल्पनाशील प्रतिभा की अन्तर्दृष्टि से देखा कि यह युद्ध ब्रिटेन और स्पेन दोनो के लिए राष्ट्रीय युद्ध था—इस घिनौनी और अमानवीय मान्यता के खिलाफ समूची जनता का युद्ध था कि वह राज्य भी कायम रहने का अधिकारी है जिसमें "सबके सिरो पर एक ऐसे आदमी के मस्तिष्क का प्रभुत्व है जिसका ध्येय ही इस सिद्धान्त पर अमल करना है कि राज्य की सर्वोच्च सत्ता अपना दामन वचाकर जो कुछ भी कर सकती है वह सव किया जाना चाहिए।" (*सिएट्रा कन्वेन्शन की पोथी से*)। १७९३ में फ्रांस के विरुद्ध छेड़े गये युद्ध के वारे में भी वर्ड्सवर्थ ने इसी अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया और इस युद्ध को, इससे पहले अमरीकी राज्यो की स्वतत्रता के खिलाफ हुए युद्ध की भाति, गलत और राष्ट्रीय हितो के खिलाफ वताया था। ये युद्ध उनकी दृष्टि में उन श्रीमन्तो के सकीर्ण हितो की खातिर लडा गया था जिनका कि सरकार प्रतिनिधित्व करती थी।

उस समय जवकि नैपोलियन एक प्राणवान क्रान्तिकारी शक्ति के

रूप में युरोप के समूचे ओर-छोर में सामन्तवाद के बन्धनो को छिन्न-भिन्न करने वाला न रहकर इतिहास के द्वन्द्वात्मक चक्र में फस कर उन्ही सामन्ती ताकतो का साथी और सरक्षक बन गया, अपने राष्ट्र को मुक्त करने वाला न रहकर अन्य राष्ट्रो का उत्पीडक बन गया, तब उसके विरुद्ध युद्ध करना न्यायपूर्ण और आवश्यक हो उठा और खुद उसकी पराजय ने अनिवार्य रूप धारण कर लिया।

खुद हमारे अपने बुर्जुआ वर्ग ने भी, ट्यूडरो के समय से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक, इतिहास में प्रगतिशील भूमिका अदा की, हमारे देश की उत्पादन शक्तियों को विकसित किया, महान साहित्य और महान विज्ञान को जन्म दिया, युरोप के अन्य राष्ट्रो को प्रभावित किया और बदले में उनके प्रभाव को भी उसने ग्रहण किया। आम तौर से, उसके अपने वर्ग हितो और राष्ट्रीय हितों में समानता थी। जब यह समानता नही रही, जब सम्पत्ति के लोभ और श्रीमन्तो के सकीर्ण तथा भ्रष्ट शासनतत्र के निकम्मेपन ने उन्हें अधा बना दिया, तब राष्ट्रीय सर्व-नाश के दिन आये—अमरीकी युद्ध तथा क्रान्तिकारी फ्रास के विरुद्ध युद्ध के शुरू के वर्ष इसके साक्षी हैं। इसी बुर्जुआ वर्ग और बुर्जुआ मस्तिष्क वाले हमारे कुलीन वर्ग के नेतृत्व में हमारे इस छोटे से द्वीप के मुट्ठी-भर लोगों ने अपने साहस और शक्ति से एक भारी साम्राज्य का निर्माण किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होने घृणित अत्याचारो का सहारा लिया, विजित देशो में ऐसे निरकुश शासन स्थापित किए जिन्हें अपने देश में कभी भी सहन न किया जाता। और यह सब इसलिए किया गया कि विजेता अग्रेजी मध्य वर्ग और उसके कुलीन सहयोगियो को नजराना देने के लिए आधीन राष्ट्रों को बाध्य किया जा सके। किन्तु यहा भी उन्होने एक प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह किया, हालाकि उस अर्थ में नही जिसमें कि भारत में ब्रिटिश शासन के हिमायती आजकल इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

मार्क्स ने वर्तानवी औपनिवेशिक शासन के इस क्रान्तिकारी पक्ष का अविस्मरणीय शब्दो में वर्णन किया है। उसे मैं यहा विस्तार के साथ उद्धृत करना चाहूगा। कारण कि आगे चलकर इस बात की ओर ध्यान

दिलाना भी जरूरी होगा कि हमारे देश और पूर्व के देशो के बीच सम्बधो में ही हमें वे महत्वपूर्ण तत्व मिलेंगे जो उस नयी कल्पना की रचना करेंगे, जिसके अभाव में हम अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा को पुनः उर्वर नहीं बना सकते। भारत पर वर्तानवी शासन के प्रभावो के सिलसिले में मार्क्स ने लिखा था "अंग्रेजो की दखलदाजी ने कताई करने वाले को लंकाशायर में और बुनाई करने वाले को बगाल में स्थापित कर, अथवा हिंदू कताई करने वाले तथा बुनाई करनेवाले—दोनो को मिटा कर, इन छोटी अर्ध-बर्बर और अर्ध-सभ्य बिरादरियो को—उनके आर्थिक आधार को नष्ट कर—विश्रृंखलित कर दिया है, और इस प्रकार ऐशिया में महानतम, और सच तो यह है कि एकमात्र *सामाजिक* क्रान्ति को जन्म दिया है .[1]

"यह सच है कि केवल निकृष्टतम हितो से उत्प्रेरित होकर ही इंग्लैंड ने हिन्दुस्तान में इस सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया और इसे बलपूर्वक लागू करने का उसका तरीका भी मूर्खतापूर्ण था। किन्तु यहा प्रश्न यह नही है। यहा प्रश्न यह है कि एशिया की सामाजिक स्थिति में आधारभूत क्रान्ति के बिना क्या मानव-जाति अपने लक्ष्य को पूरा कर सकती है? यदि नही, तो इंग्लैंड ने चाहे जो भी जुर्म किये हो, उस क्रान्ति को सम्पन्न करने में उसने इतिहास के एक अचेतन साधन का काम किया।"[2]

अपने एक अन्य लेख में इसी विचार को आगे विकसित करते हुए मार्क्स ने लिखा :

"बुर्जुआ वर्ग चाहे जो कुछ भी करने पर बाध्य हो उससे जनसाधारण का न तो उद्धार हो सकता है और न ही उनकी सामाजिक स्थिति में कोई ठोस सुधार आ सकता है। कारण कि यह बात उत्पादन की ताकतों के विकास पर ही नही, वरन् जनता द्वारा उनकी प्राप्ति पर भी निर्भर करती है। किन्तु एक काम करने में उससे चूक नही होगी। वह यह कि इन दोनो के लिए भौतिक आधार वह तैयार कर देगा। क्या बुर्जुआ वर्ग ने कभी इससे अधिक भी किया है? क्या इसने व्यक्तियो और जनता को रक्त और कीच में से घसीटे बिना, दुःख और पतन में से घसीटे बिना, कभी भी कोई प्रगति की है?

हिन्दवासी बर्तानवी बुर्जुआ वर्ग द्वारा उनके बीच बिखेरे गए इन नये सामाजिक तत्वो का फल उस समय तक नही पा सकते जब तक कि खुद ब्रिटेन के मौजूदा शासक वर्गों का स्थान औद्योगिक सर्वहारा वर्ग नही ले लेता, या जब तक कि खुद हिन्दू इतने अधिक मजबूत नही हो जाते कि अग्रेजो के जुवे को एकदम उतार फेंकें।"[1]

मार्क्स की इन भविष्यवाणियो को ध्यान में रखने पर यह समझ में आ जाता है कि हमारी सरकार की नीति को अफ्रीका और स्पेन में क्यो मुहकी खानी पडी। एक ओर हमारा शासक वर्ग अपने भारतीय साम्राज्य—जिस पर कि उसकी आर्थिक शक्ति इस हद तक अवलम्बित है—को सुरक्षित रखना चाहता था। दूसरी ओर वह जर्मनी तथा इटली के फासिस्त आतकवादियो के बीच मानव-प्रगति के दुश्मनो के प्रति अपनी स्वाभाविक सहानुभूति भी दिखाना चाहता था। इन विरोधी इच्छाओ की खीचतान में वह—जो कि दुनिया में अपने प्रगतिशील भूमिका को बहुत पहले ही खत्म कर चुका है—कमजोर और मुजरिमाना हद तक ढुलमुल सिद्ध हुआ है, सम्पूर्ण बर्तानवी जनो के हितो से उसने विश्वासघात किया है और हमारी वर्तमान स्वतत्रताओ और राष्ट्रीय आजादी तक को, मिल्टन के शब्दो में उन सभी गुणो को जिनका कि हमारे पूर्वजो ने हम में सचार किया, खतरे में डाल दिया है। निस्सन्देह अब वे ठीक उस स्थिति में पहुच गए हैं, जो स्वाधीनता के शत्रु अपनाते हैं, और जिसकी मिल्टन ने घोषणा की थी। यह कि वे "उस निषिद्ध तथा निर्मम कानून को फिर से लागू करें कि पिता जब भी चाहे अपने बच्चो का काम तमाम कर सकते हैं।"

हमारे ह्रासग्रस्त शासको का भारी भरकम साम्राज्य अन्य ताकतो की—उन ताकतो की जो खुद उनसे भी ज्यादा सिद्धान्तविहीन तथा अत्याचारी हैं, जो खुद अपनी जातीय विरासत और साथ ही समूची मानवता की सामूहिक सास्कृतिक विरासत से इन्कार करके ह्रास के अन्तिम छोर पर पहुच चुकी हैं—आखो में गड रहा है। इस साम्राज्य की रक्षा करने के लिए हमारे शासको को फासिज्म तथा प्रतिक्रिया के विरुद्ध जनतत्र तथा प्रगति के साथ हाथ मिलाना होगा। किन्तु ऐसा

करने से—और उनकी यह दलील ठीक ही है—और भी निश्चयात्मक रूप से वे खतरे में पड जाएगे, क्योकि उससे उनके अपने देश की जनता उठ खडी होगी। इसलिए वे, डगमगाती हिचकिचाहट के साथ, ऐसी समझौतापरस्ती का दामन पकडते हैं, जिससे वे भारत, अफ्रीका अथवा पश्चिमी एशिया में अपनी लुटेरी सत्ता को कायम रखने के लिए किसी वर्तानवी वैंक, वीमा कम्पनी या औद्योगिक इजारेदारी के अधिकार को सुरक्षित रख सकें, चाहे ऐसा करने पर और कुछ न वचे और इससे अधिक महत्वपूर्ण मानवीय अधिकार खतरे में पड जाए।

आज हमारी जनता का हित, हमारा सच्चा राष्ट्रीय हित, जनतत्र और राष्ट्रीय मुक्ति के उन महान आन्दोलनो की स्वतत्रता का समर्थन करने में है जो कि अरव, अफ्रीकी तथा भारतीय जनता में नये जीवन का ससार कर रहे हैं। साम्राजी अत्याचार को कायम रखने के वर्तमान प्रयास के मुकावले में स्वतन्त्र राष्ट्रो का गठवन्धन सभी की स्वतन्त्रताओ की—खुद हमारी भी—रक्षा के लिए कही अधिक शक्तिशाली अस्त्र सिद्ध होगा। यह अत्याचार एक राष्ट्र के रूप में खुद हमारी स्वतत्रता को भी खतरे में डालता है, क्योंकि साम्राजी शासक गुट, अपने निकम्मेपन के कारण, जगन्नाथ के उस रथ से अपनी रक्षा नही कर सकता जिसका निर्माण उसने खुद किया है। यह जगन्नाथ का रथ अपने पहियो के नीचे उन्हें कुचल डालेगा। अपनी स्थिति को समझ कर यदि हम उन्मुक्त इग्लैंड की ओर से उन्मुक्त भारत, अफ्रीका और अरविस्तान की ओर मित्रता का हाथ नही वढाते तो वह हमें भी कुचल डालेगा।

एक राजनीतिक प्रश्न पर इतने विस्तार के साथ मैंने क्यो लिखा ? कारण यह कि इस प्रश्न के समुचित हल के साथ कलात्मक रचना का वह प्रश्न जुडा है जो कि मेरे इस निवन्ध का विषय है। एक जाति के रूप में हमारे भाग्य का आज निर्णय हो रहा है। हमारा यह सौभाग्य है कि हमने इतिहास के एक ऐसे दौर में जन्म लिया है जो व्यक्तिगत रूप में हममें से प्रत्येक से अपना निजी निर्णय करने की माग करता है। हैमलेट यह सोच कर विलाप कर सकता था कि उसका जन्म ऐसे सधि-काल में क्यों हुआ और हम भी इससे अधिक शान्तिपूर्ण काल की इच्छा

कर सकते हैं, किन्तु अपना निर्णय करने के प्रश्न से न तो हैमलैट का पीछा छुटा था और न हम ही उससे बच सकते हैं। हम मृतको के साथ उसी आध्यात्मिक बिरादरी का एक अग हैं जिसका कि वर्ड्सवर्थ ने जिक्र किया था। हम अलग नही खडे रह सकते, और अपने कर्म से अपनी कल्पना का हम विस्तार करेंगे, कारण कि हमें अपनी चिरपोपित आकाक्षाओं-उमगो के प्रति सच्चा रहना है।

मेरी इस निबन्ध रचना के दौरान में लन्दन में आस्ट्रेलिया के एक प्रसिद्ध नाटककार, आर्थर श्नीज्लर का यहूदी-विरोध पर एक नाटक खेला जा रहा है। मि डेस्मण्ड मैकार्थी[1] ने अपनी सूक्ष्म समालोचना में कहा है कि यह नाटक एक पुराने फैशन का नाटक है, इसके अलावा इसका लेखक भी अब इस दुनिया में नही है। किन्तु इसकी विषय-वस्तु आज भी खूब जीवित है, लेखक के जीवन-काल की तुलना में कही अधिक जीवित है और यह नाटक—जैसा कि मि मैकार्थी ने कौतुक-पूर्ण ढग से किन्तु सच ही कहा—पुराने फैशन का केवल इसलिए है कि "इसकी गठन ठीक वैसी ही है जैसी कि इस ढग के नाटक की होनी चाहिए। आजकल ऐसे नाटक विरले ही लिखे जाते हैं, कारण कि जो नाटककार अपने धंधे के माहिर हैं वे खुद जीवन के बारे में कुछ सोच सकने में असमर्थ हैं और इसलिए उचित ही वे ऐसे नाटक लिखने की कोशिश नही करते जो लोगो को सोचने का मौका दें।"

कलाकार नही जानता कि वह जीवन के बारे में क्या सोचे। किन्तु जब तक कलाकार जीवन के बारे में कुछ सोचने का साहस नही करता तब तक वह जीवन की रचना भी नही कर सकता। अमहत्वपूर्ण लोगो का एक छोटा-सा चित्र वह बना सकता है या किसी निर्दोष-सी भावना को लेकर बहुत ही सफाई से बाल की खाल निकाल सकता है, किन्तु बिना विचार के वह जीवन की रचना नही कर सकता। "मैं सोचता हू, इसलिए मेरा अस्तित्व है," यह बात कला के लिए भी सार्थक है और जीवन के लिए भी। फ्रासीसी निबधकार अलेन ने बहुत ही समझदारी के साथ बताया है कि समसामयिक मनोविज्ञान का मुख्य दोष यह है कि पागलो और रोगियो में उसका जरूरत से ज्यादा विश्वास है। यह भी

जीवन से आम भय का, मानवता की विरादरी से वाहर रहने के प्रयास का, एक हिस्सा है। "हमें इस विरादरी से अलग नही किया जा सकता," यह वर्ड्सवर्थ का निष्कर्ष था, "और इसीलिए हम आशावान हैं।" आशा अकेले इसी शर्त पर लौट सकती है कि हम विरादरी से अलग न हों।

आधुनिक उपन्यासकार, आधुनिक मनोविज्ञान की प्राथमिक गलती में फसकर, पागलो और रोगियो में अपनी कल्पना के लिए आधार खोजता है। आशा का, अथवा आशा का आधार खोजने के साहस का, उसमें अभाव है। यह मि एवलिन वौघ के वारे में भी उतना ही सच है, जितना कि अल्डस हक्सले के वारे में। इस आधार को स्वीकार करने के परिणामस्वरूप मि वौघ रोमन-गिरजे के रहस्यमय-निराशावाद की शरण में जा पहुचे हैं और मि हक्सले इसी आधार को मानकर एक नकारात्मक शातिवादी अराजकता का प्रचार करते हैं जिसमें किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता के लिए जगह नहीं होती और जो व्यवहार में मि वौघ की दुनिया और उसके पापो से सन्यास लेने की धारणा से विशेप भेद नही रखती। "भले और नेक हाथो में," वर्ड्सवर्थ का खयाल था, "तलवार घृणा का सवसे स्पष्ट समझ में आने वाला प्रतीक है।" किन्तु अल्डस हक्सले हैं कि नेक और वद में तमीज नही कर पाते, कारण कि ऐसा कर सकने के लिए जीवन के वारे में एक ऐसे दृष्टिकोण की जरूरत है जो पागलों और रोगियों पर आधारित न हो। फलत वह खुद बुराई से भी ज्यादा घृणा के प्रतीक से घृणा करते हैं।

जिस पौष्टिक द्रव्य के अभाव में हमारी आधुनिक कल्पना क्षीण हो रही थी, उसे आज रूसी क्रान्ति ने प्रदान किया है। वह घोपणा करती है कि मानव द्वारा मानव के उत्पीडन और शोपण के विना, उन्मुक्त और समान जातियों के मित्रतापूर्ण सहयोग के आधार पर, मानव के जीवन का सगठन किया जा सकता है। यही वह चीज है जिसमें सोवियत साहित्य का—वावजूद इसके कि वह अभी इतना नया और अपरिपक्व है—महत्व निहित है। वह हमें वताता है कि अपनी शक्ति के अक्षय स्रोतो से किस प्रकार हम ताजा वल प्राप्त कर सकते हैं। शक्ति का वह स्रोत है हमारी *स्वतन्त्रता*, जो उस गुण से उत्पन्न हुई है जिसका हमारे

पूर्वजों ने हममें प्रतिपादन किया था। यह मानव को वैसा बनाने की स्वतन्त्रता है जैसा कि उसे होना चाहिए—"परिस्थितियो का एकछत्र स्वामी," जैसा कि मार्क्स ने कहा था।

वर्ड्सवर्थ उस निर्बाध शक्ति से परिचित थे जिसने उनके काल में कल्पना को बल प्रदान किया था। इस शक्ति का स्रोत फ्रान्स की क्रान्ति थी। "ऊषा की उस बेला में जीवित रहना एक महान अनुभव था," उन्होंने कहा था, और ऊषा की उस बेला की महानता ने उनकी आंखो को 'गीति काव्यो' की नयी दृष्टि प्रदान की। बाद में, सघर्षों से पूर्ण बोझिल वर्षों ने वर्ड्सवर्थ की इस दृष्टि को कुछ धुधला कर दिया। किन्तु स्पेन में राष्ट्रीय क्रान्ति के उत्थान के साथ और इस क्रान्ति से अग्रेज जनता के हृदयो में भावनाओं का जो ज्वार उठा, उसके साथ, उनकी दृष्टि पुन जीवित हो उठी। इससे अनुप्रेरित होकर वर्ड्सवर्थ ने अग्रेजी गद्य की एक अमूल्य निधि—*ट्रैक्ट औन दि कन्वेंशन आफ सिएट्रा*—की रचना की। यह ट्रैक्ट काव्यात्मक कल्पना के वास्तविक आधार का, मानव की कल्पना और मानव के जीवन के बीच सच्चे सम्बध का, उद्घाटन कर देता है

"उत्पीडन ने, जो कि खुद अपना अधा तथा पूर्वनिश्चित शत्रु है, स्पेन पर इस एक वरदान की वर्षा की है—अपमान-लाछनो की प्रचण्डता ने, जिनका कि वह शिकार रहा है, प्रेम और घृणा के एक पात्र की—आशकाओ और आशाओ के एक पात्र की रचना कर दी है—जो मानव-आत्मा की बडी-से-बडी आकाक्षाओ के (यदि ऐसा सम्भव हो सके तो) अनुकूल है। वह हृदय, जो इस लक्ष्य की सेवा में जुटा है, यदि क्षीण होता है तो ऐसा अपनी निजी कमजोरी के कारण ही होता है, बाहरी पोषण के अभाव के कारण नही। किन्तु पुस्तको ने इस विश्वास का प्रचार किया है और वाक्चतुर लोगो में भी एक बुद्धिमत्तापूर्ण कथन के रूप में यह प्रचलित है कि अनेक लोगो के हृदय कमजोर *होते* हैं, कि उनका क्षय *होता ही* है, और यह कि जरूरत के वक्त वे मुश्किल से ही डटे रह सकते हैं। मेरा अनुरोध है उनसे जो इस भ्रम को सजोकर रखे हैं कि जरा अपने पीछे मुडकर और अगल-बगल नजर डालकर अनुभव

की साक्षी प्राप्त करें। अब इससे, ठीक से देखा जाए तो न केवल इस भ्रम को कोई टेक नहीं मिलेगी, बल्कि सिद्ध होगा कि सचाई ठीक इससे विपरीत है। सभी युगो का इतिहास, एक के बाद दूसरी उथल-पुथल, वैदेशिक या घरेलू युद्ध, छुटपुट या सास लेने का भी अवकाश न छोडने वाले, पीढी-दर-पीढी, युद्ध — क्यो और किसलिए ? फिर भी साहस के साथ, अडिग धीरज के साथ, आत्म-बलिदान और जोश के साथ, क्रूरता के साथ — जो स्वय अपनी भयानक नग्नता से क्रूर आदमी को आगे ढकेलती है और अधिक भले लोगो को आकर्षित करने के लिए एक ऐसी झीनी छाया से अपने-आपको ढक लेती है जो उसे पवित्रता प्रदान करती प्रतीत होती है—ये युद्ध लडे जाते हैं, गुटो का बेमानी ताना-बाना और साजिश-दर-साजिश — उत्तरी रोशनियो की भाति उनका ओझल होना, और फिर प्रकट होकर एक-दूसरे को बींधने लगना, हलचल — सार्वजनिक भी और व्यक्तियों के हृदयो को झझोडनेवाली भी, लम्बे विरह का ताप जो प्रेमी को जलाता है, थपेडे — रेगिस्तानी आधिओं के थपेडो के समान, जो जुआरी के मस्तिष्क के भीतर उसके अपने रचे हुए भयानक शून्य में बारहो महीने सनसनाते रहते हैं, धीरे-धीरे किन्तु हर घडी तेज होती हुई फिसलनी भूख जो कजूस का कभी पीछा नहीं छोडती; वेदनामय और हृदय को विदीर्ण करने वाले शोक का उत्पीडन, प्रेत के समान लज्जा का हावी रहना, प्रतिशोध की न बुझने वाली आग, जीवन को रगने वाली आकाक्षा, ये अन्तर्मुखी जिन्दगिया, और हर नगर तथा गांव में आए दिन की प्रत्यक्ष तथा परिचित घटनाए, नगर की सड़कों तथा नाट्यशालाओ की दीवारो के भीतर जन-समूहो का धैर्यपूर्ण कौतूहल और छूत के समान फैलने वाले हर्षोद्गार, जलूस या देहाती नृत्य; शिकार या घुडदौड, बाढ या अगलग्गी; सौभाग्य की अप्रत्याशित न्योछावर या किसी जागीरदार के मूर्ख उत्तराधिकारी के आगमन पर रगरलियो और घटियों की झंकार, ये सब अकाट्य साक्षी हैं इस बात के कि लोगो के राग-अनुराग (मेरा मतलब लोगो के हृदय में उनकी सवेदनशीलता की आत्मा से है) — सभी झगडो में, सभी मुकाबिलो में, सभी खोजों में, सभी रगरलियो में, सभी कार्यों में जिनमें या तो मनुष्य स्वय व्यस्त

यह पोषण हमें अब पुन: प्राप्त होगा। एशिया की प्राचीन और ऐतिहासिक जातियों की अक्षय जीवन-शक्ति अब क्रान्तिकारी उभार ग्रहण कर रही है। भावुक लोग पूर्व में 'पश्चिमी' विचारो के—अर्थात आधुनिक विज्ञान और उत्पादन के साधनो के—प्रतिपादन को कोसते हैं। उन्हें कोसने की आवश्यकता नही। एशिया की जातिया, जो आशिक रूप में अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुकी हैं, एक बार इन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगी तो दास भाव से हमारी अपनी कमजोरियो की नकल करना छोड देंगी। जीवन के बारे में नया दृष्टिकोण बनाने में उनका सहयोग तब आवश्यक होगा, और वह उस दृष्टिकोण का कुछ कम महत्वपूर्ण अश सिद्ध नही होगा। एशिया की जातियो का मैं इसलिए उल्लेख करता हू, क्योकि उनकी सभ्यता दुनिया में सबसे पुरानी और सबसे मजबूत है। साथ ही हमें यह भी नजरन्दाज नही करना चाहिए कि उन्मुक्त मानवता की इस कल्पना को सशक्त बनाने में अफ्रीका तथा अमरीका की हिन्द-स्पेनी जातियो की शक्ति के प्राय अछूते भण्डार भी योग देंगे।

दुनिया आज बुरी तरह विभाजित है। किन्तु एकता की ताकतें भी क्रियाशील हैं, और यह एक ऐसी बात है जिसे नये युग के उपन्यासकार को हमेशा अपने दिमाग में सर्वप्रथम स्थान देना चाहिए। एकता की इस प्रक्रिया का भारत सम्बधी अपने लेखो में मार्क्स ने बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। इन लेखो में से मैं पहले भी उदाहरण दे चुका हू और अब फिर, इस निबध का अन्त करते समय, इससे अच्छी बात और क्या होगी कि मार्क्स का एक अन्य उदाहरण यहा दू जिसमें उन्होने पूर्व और पश्चिम के सम्बधो का विश्लेषण किया है

"एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में पूजी के अस्तित्व के लिए पूजी का केन्द्रीकरण आवश्यक है। विश्व की मडियों पर इस केन्द्रीकरण का विनाशकारी प्रभाव, राजनीतिक अर्थतन्त्र के उन सन्निहित मूल कानूनों को प्रकट करता है जो हर सभ्य नगर में, अत्यत भीमाकार परिमाणो में, आजकल क्रियाशील हैं। इतिहास के इस बुर्जुआ काल को नयी दुनिया के भौतिक आधार का निर्माण करना है—एक ओर मानवजाति की पारस्परिक निर्भरता पर आधारित सार्वभौमिक आदान-प्रदान और इस

ग्रादान-प्रदान के साधन, और दूसरी ओर मानव की उत्पादक ताकतो का विकास और प्राकृतिक प्रसाधनो पर वैज्ञानिक प्रभुत्व के लिए भौतिक कायापलट। बुर्जुग्रा उद्योग और व्यापार नयी दुनिया की इन भौतिक उत्पादन की परिस्थितियों की उसी प्रकार रचना करता है जैसे कि पृथ्वी के गर्भ में हुई क्रान्तियो ने धरती की सतह की रचना की है। जब एक महान सामाजिक क्रान्ति बुर्जुग्रा युग की देनो पर — विश्व की मण्डी और उत्पादन की ग्राधुनिक ताकतो पर — ग्रपना प्रभुत्व कायम कर लेगी और उन्हे ग्रत्यत उन्नत जातियो के सामूहिक नियन्त्रण के मातहत सौंप देगी, केवल उसी समय मानव प्रगति हिन्दुग्रो की उस देवी के समान नहीं रहेगी जो केवल बलि किये हुए प्राणी की खोपडी से ही ग्रमृतपान करती है।"[1]

हेनरी बारबूस

कुछ ही सप्ताह पहले की बात है जब मैंने हेनरी बारबूस को पेरिस में हुई विश्व लेखको की कांग्रेस[1] की मच पर देखा था प्रेरणा के स्रोत, नेतृत्व करते हुए, हृदय में एक नये ससार के लक्ष्य के प्रति भक्ति की जोत जगाये !

दुबला-पतला शरीर, क्षीण ढांचा । शुभ्र मस्तिष्क । गालो की हड्डियां उभरी हुई । आखें भीतर की ओर गहरी धसी, किन्तु अनुप्राणित, जिनमें दुर्बल शरीर के बावजूद थकान की छाया तक नही । जिसने भी उन्हे देखा, प्रभावित हुए बिना नही रहा ।

खचाखच भरे और उत्सुकता से दम साधे उस हाल में जैसे ही वह बोलने के लिए खडे हुए, उनके अभिनन्दन में जोरो से करतल ध्वनि गूज उठी । इस गूज ने उन्हे अपने में समेट लिया । उसकी प्रेम की गरमाई से एक क्षण के लिए वह विचलित से हो उठे ।

ऐसा लगता था मानो यह आदमी और समूची जनता एक हो गये हो ।

फ्रान्स के मजदूर और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी हेनरी बारबूस को हृदय से चाहते थे —वह उनके प्यारे थे । इस प्रेम का कारण था उनके लक्ष्य के प्रति, समूची दुनिया के मजदूरो के लक्ष्य के प्रति, साम्यवाद के लक्ष्य के प्रति, बारबूस की गहरी और अडिग लगन ।

एक बार फिर, केवल तीन सप्ताह बाद, मैंने उन्हें दुबारा देखा । और यह उनका अन्तिम दर्शन था । लेकिन सम्भवत यह उनके जीवन का सबसे महान दिवस था । वह एक टैक्सी में खडे थे । उनका लम्बा, कुछ-कुछ झुका हुआ शरीर एक विशाल लाल झडे की परतो में घुलमिल

रहा था। पेरिस की जनता के एक महानतम प्रदर्शन की, एक ऐसे प्रदर्शन की जो कि क्रान्तियों के इस नगर के लिए भी अभूतपूर्व था, वह अगुवाई कर रहे थे।

यह चौदह जुलाई[1] का दिन था, दुनिया को बदल देने वाली १७८९ की महान क्रान्ति की वर्षगाठ का दिन। जन-मोर्चा आगे बढ रहा था। लगभग पाच लाख स्त्री और पुरुष, उन अधिकारो की रक्षा के लिए कमर कसे आगे बढ रहे थे जिन्हें उस क्रान्ति ने जीता था। उनकी माग थी— मेहनतकशों को रोटी दो, काम दो, शान्ति दो। वे उन फासिस्त लुटेरो को निहत्था करना चाहते थे जो सभ्यता को आतकित कर रहे थे।

उस महान जन-आन्दोलन की सफलता का श्रेय जितना अधिक हैनरी बारबूस को है उतना अन्य किसी को नही। और उस आन्दोलन का प्रभाव, आज भी समूची दुनिया में अनुभव किया जा सकता है। यह हैनरी बारबूस ही थे जिन्होने युद्ध तथा फासिज्म के विरुद्ध एकता के लिए ऐम्स्टर्डम-प्लेयेल आन्दोलन[2] की नीव डाली और चौदह जुलाई १९३५ को सम्भव बनाया। जन मोर्चे की महान विजय भी उनकी ही विजय थी।

हैनरी बारबूस का स्मरण सदा इसी रूप में किया जाना चाहिए— फ्रान्स के शानदार मजदूरो के प्रेम से आलोकित, तथा उनकी क्रान्तिकारी जीत से सदा अनुप्राणित। तो भी उनके जर्जर शरीर और जमाने की चोट खाये चेहरे को देखकर यह कभी नही भुलाया जा सकता था कि कितना भयानक और कितना कठिन सघर्ष उन्हें जीवन में करना पडा। उनका जन्म १८७३ में हुआ था, और फ्रान्सीसी बुद्धिजीवियो की युद्ध-पूर्व की पीढी के साचे में वह ढले थे। उनकी किम्कर्तव्यविमूढता, और उनकी निराशावादी सौन्दर्य-भावना, उन्हें उन्ही से मिली थी।

कवि और उपन्यासकार, एक फैशनेबुल पत्रिका के तरुण साहित्यिक सम्पादक। जन साधारण से न तो उनका कोई सम्पर्क था, न उसके प्रति सहानुभूति। तब भी उनमें एक चीज थी। यह चीज थी, गहरी सम्वेदनशीलता और मानव जीवन की विडम्बना के प्रति क्षोभ।

जैसा कि लेनिन ने कहा था, वह एकदम अनजान थे, स्वय अपने विचारों तथा अधविश्वास से दबे हुए—मध्यम वर्ग के एक शान्तिप्रिय,

विनम्र, कानून-पसन्द सदस्य थे। एक हत्याकांड ने हैनरी वारबूस की कायापलट कर दी। यह हत्याकाड था साम्राज्यवादी युद्ध का हत्याकाड। अगर एक वार फिर लेनिन के ही शब्दो को इस्तेमाल करें तो हम कहेंगे कि वह एक अत्यत दृढ प्रतिभाशाली तथा न्यायप्रिय व्यक्ति वन गये।

उनकी पुस्तक *ले फ्यू* (आग की लपटो में) युद्ध के विरुद्ध पहली आवाज थी। यह एक ऐसी आवाज थी जिससे पता चलता था कि इस पुस्तक का लेखक खाइयो के नारकीय जीवन से गुजरा है और उसने सभी कुछ अन्त तक देखा है।

आग की लपटों में एक ऐसी पुस्तक है जो चौकस, किन्तु कुछ-कुछ अनिश्चित ढगों से, तो भी पूरी स्पष्टता और असदिग्धता से, केवल एक ही सवक देती है, वह यह कि युद्ध के पाप का अन्त तभी हो सकता है जवकि हर देश के उन अपराधियो के खिलाफ एक जीवनान्त युद्ध छेड़ दिया जाए जो जन समुदायों को वलि का वकरा वना रहे हैं।

१६१७ में, स्वय एक सैनिक—एक अफसर—द्वारा ऐसी पुस्तक का लिखा जाना व्यक्तिगत और सामाजिक साहस का उल्लेखनीय कृत्य था। लेनिन ने सदा जोर देकर कहा था कि हैनरी वारबूस की पुस्तक *आग की लपटों में* और उसकी अगली कडी *आलोक* पश्चिमी देशो की जनता में क्रान्तिकारी भावना के सचार की ज्वलत उदाहरण थी।

तव से वारबूस के सामने केवल एक ही लक्ष्य रहा है कम्युनिज्म के लिए क्रान्तिकारी सघर्ष का लक्ष्य। युद्ध के कारण उनका स्वास्थ्य ध्वस्त हो गया था। निजी जीवन उनका ऐसा था कि सुख पास नही फटकता था। लेकिन वह थे कि अपने-आपको और अपनी प्रतिभा को पूर्णतया मजदूर वर्ग की सेवा में होम दिया। उनका महान उपन्यास *जजीरें*, वावजूद इसके कि उसे पूर्णतया सफल प्रयास नही कहा जा सकता, युगो-युगो से मानव को दासता की जजीरों में जकडने के क्रम का चित्रण करता है। इसके पन्ने हर देश में जनता के उत्पीडको तथा आततायियो के प्रति मानव की घृणा की दहकती कहानियो से भरे हैं। उत्पीडितो के प्रति उनके महान प्रेम और शोषको के प्रति उनकी घृणा के वे साक्षी हैं।

फ्रान्स में जोला जैसे महान लेखक को, सौन्दर्यवादियो और बुद्धिजीवियो ने जिसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था, फिर से अपने पद पर स्थापित करने का काम सबसे पहले जिन लोगो ने किया, उनमें हैनरी बारबूस भी थे। साथ ही पहले 'क्लार्ते'[1] और बाद में 'मौन्दे'[2] के सपादक की हैसियत से, फ्रान्स के बुद्धिजीवियो के आन्दोलन में उन्होने क्रमश एक सुदृढ वामपक्ष का निर्माण किया।

उनकी अन्तिम पुस्तक, जो कुछ ही दिनो में इग्लैड में प्रकाशित होने वाली है, स्तालिन की जीवनी है। यह पुस्तक दुनिया के मजदूरो के नेता तथा सोवियत सघ में एक स्वतत्र, समाजवादी समाज के सफल निर्माण के प्रति एक महान लेखक की श्रद्धाजलि है।

मृत्यु से पहले वह लेनिन के पत्रो का टिप्पणियो-सहित एक सस्करण तैयार करने में जुटे हुए थे। इसके साथ ही वह एक महान उपन्यास भी लिख रहे थे जिसका उद्देश्य उन परिवर्तनो को प्रतिबिम्बित करना था जो कि आज सभी मानवीय सम्बधो में हो रहे हैं।

बारबूस का नाम समूची दुनिया में फैला हुआ है। शायद ही कोई भाषा हो जिसमें उनकी कृतिया अनूदित न हुई हो। उन लाखो-लाख लोगो के लिए भी, जिन्होने कभी उन्हे देखा नहीं, जो उनके देश तक को नही जानते हैं, वह सभ्यता की आहत आत्मा के प्रतीक थे, वह पूजी के दानवो और उनके पिट्ठुओ के प्रति विरोध और विक्षोभ की साकार प्रतिमा थे।

वह एक ऐसे मानव थे जिन्होने कटु सघर्षों के दौरान में अपने-आप को नये साचे में ढाला, एक ऐसे साचे में जिससे कि वह उस बहुलक्षी जनता की आवाज बन सके, जो पूजीवादी क्रूरता तथा मानवीय सम्बधो के पूजीवादी भ्रष्टीकरण से सदा के लिए मुक्त एक नये और उन्मुक्त समाज के लिए सघर्ष कर रही है।

बारबूस, जिनकी महान पुस्तक *आग की लपटों में* शत्रु के मुह पर दागी गयी गोली थी और जो अभी अपने को अकेला अनुभव करते थे, मोर्चे पर लडते हुए मरे। सघर्षो ने यद्यपि उन्हे नि:सत्व कर दिया था,

तो भी वह विजय की ओर प्रयाण करती अनगिनत सेना के एक प्रिय नेता बन चुके थे।

ऐसे समय में जबकि एक नया विश्वयुद्ध सिर पर मडरा है, क्रान्ति के वीर हैनरी वारबूस से हम विदा लेते हैं और उनका अभिनन्दन करते हैं।

डेली वर्कर, ३१ अगस्त, १९३५।

फ्रान्स में जोला जैसे महान लेखक को, सौन्दर्यवादियो और बुद्धिजीवियो ने जिसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था, फिर से अपने पद पर स्थापित करने का काम सबसे पहले जिन लोगो ने किया, उनमें हैनरी बारबूस भी थे। साथ ही पहले 'क्लार्ते'[1] और बाद में 'मौन्दे'[2] के सपादक की हैसियत से, फ्रान्स के बुद्धिजीवियो के आन्दोलन में उन्होने क्रमश एक सुदृढ वामपक्ष का निर्माण किया।

उनकी अन्तिम पुस्तक, जो कुछ ही दिनो मे इग्लैंड में प्रकाशित होने वाली है, स्तालिन की जीवनी है। यह पुस्तक दुनिया के मजदूरो के नेता तथा सोवियत सघ में एक स्वतत्र, समाजवादी समाज के सफल निर्माण के प्रति एक महान लेखक की श्रद्धाजलि है।

मृत्यु से पहले वह लेनिन के पत्रो का टिप्पणियो-सहित एक सस्करण तैयार करने में जुटे हुए थे। इसके साथ ही वह एक महान उपन्यास भी लिख रहे थे जिसका उद्देश्य उन परिवर्तनो को प्रतिबिम्बित करना था जो कि आज सभी मानवीय सम्बधो में हो रहे हैं।

बारबूस का नाम समूची दुनिया में फैला हुआ है। शायद ही कोई भाषा हो जिसमें उनकी कृतिया अनूदित न हुई हो। उन लाखो-लाख लोगो के लिए भी, जिन्होने कभी उन्हे देखा नही, जो उनके देश तक को नही जानते हैं, वह सभ्यता की आहत आत्मा के प्रतीक थे, वह पूजी के दानवो और उनके पिट्ठुओं के प्रति विरोध और विक्षोभ की साकार प्रतिमा थे।

वह एक ऐसे मानव थे जिन्होने कटु सघर्षों के दौरान में अपने-आप को नये साचे में ढाला, एक ऐसे सांचे में जिससे कि वह उस बहुलक्षी जनता की आवाज बन सके, जो पूजीवादी क्रूरता तथा मानवीय सम्बधो के पूजीवादी भ्रष्टीकरण से सदा के लिए मुक्त एक नये और उन्मुक्त समाज के लिए सघर्ष कर रही है।

बारबूस, जिनकी महान पुस्तक *आग की लपटों में* शत्रु के मुह पर दागी गयी गोली थी और जो अभी अपने को अकेला अनुभव करते थे, मोर्चे पर लडते हुए मरे। सघर्षों ने यद्यपि उन्हें नि सत्व कर दिया था,

तो भी वह विजय की ओर प्रयाण करती अनगिनत सेना के एक प्रिय नेता बन चुके थे।

ऐसे समय में जबकि एक नया विश्वयुद्ध सिर पर मडरा है, क्रान्ति के वीर हैनरी बारबूस से हम विदा लेते हैं और उनका अभिनन्दन करते हैं।

डेली वर्कर, ३१ अगस्त, १९३५।

फ्रान्स में जोला जैसे महान लेखक को, सौन्दर्यवादियो और बुद्धिजीवियो ने जिसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था, फिर से अपने पद पर स्थापित करने का काम सबसे पहले जिन लोगो ने किया, उनमें हैनरी बारबूस भी थे। साथ ही पहले 'क्लार्ते'[1] और बाद में 'मौन्दे'[2] के सपादक की हैसियत से, फ्रान्स के बुद्धिजीवियो के आन्दोलन में उन्होनें क्रमश एक सुदृढ वामपक्ष का निर्माण किया।

उनकी अन्तिम पुस्तक, जो कुछ ही दिनो में इग्लैड में प्रकाशित होने वाली है, स्तालिन की जीवनी है। यह पुस्तक दुनिया के मजदूरो के नेता तथा सोवियत सघ में एक स्वतत्र, समाजवादी समाज के सफल निर्माण के प्रति एक महान लेखक की श्रद्धाजलि है।

मृत्यु से पहले वह लेनिन के पत्रो का टिप्पणियो-सहित एक सस्करण तैयार करने में जुटे हुए थे। इसके साथ ही वह एक महान उपन्यास भी लिख रहे थे जिसका उद्देश्य उन परिवर्तनो को प्रतिबिम्बित करना था जो कि आज सभी मानवीय सम्बधो में हो रहे हैं।

बारबूस का नाम समूची दुनिया में फैला हुआ है। शायद ही कोई भाषा हो जिसमें उनकी कृतिया अनूदित न हुई हो। उन लाखो-लाख लोगो के लिए भी, जिन्होने कभी उन्हे देखा नही, जो उनके देश तक को नही जानते हैं, वह सभ्यता की आहत आत्मा के प्रतीक थे, वह पूजी के दानवो और उनके पिट्ठुओ के प्रति विरोध और विक्षोभ की साकार प्रतिमा थे।

वह एक ऐसे मानव थे जिन्होने कटु सघर्षों के दौरान में अपने-आप को नये साचे में ढाला, एक ऐसे साचे में जिससे कि वह उस बहुलक्षी जनता की आवाज बन सके, जो पूजीवादी क्रूरता तथा मानवीय सम्बधो के पूजीवादी भ्रष्टीकरण से सदा के लिए मुक्त एक नये और उन्मुक्त समाज के लिए सघर्ष कर रही है।

बारबूस, जिनकी महान पुस्तक *आग की लपटों में* शत्रु के मुह पर दागी गयी गोली थी और जो अभी अपने को अकेला अनुभव करते थे, मोर्चे पर लडते हुए मरे। सघर्षों ने यद्यपि उन्हे नि सत्व कर दिया था,

की भाति, इतनी स्पष्टता से इस सत्य को देखा कि मानवीय नीचता की जडें हमारी सभ्यता के साम्पत्तिक ढाचे में जमी हैं।

अपने अन्तिम सार्वजनिक भाषण में, जिसकी सर्वश्री हयुवर्ट ग्रिफिथ और रैल्फ वेट्स[1] ने आज की सभा में अभी चर्चा भी की है, सोवियत लेखक सघ की पहली काग्रेस का उद्घाटन करते हुए गोर्की ने कहा था .

"न्यायाधीश की हैसियत से हम फैसला देते हैं इस दुनिया के वारे में जिसे नष्ट होना ही होना है, और मानव की हैसियत से हम ऊंचा उठाते हैं असली मानवता को, क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की मानवता को, उन लोगों की मानवता को जिन्हें इतिहास ने समूची दुनिया को उन सवसे मुक्त करने के लिए आमन्त्रित किया है जो ईर्ष्या, धनलिप्सा तथा उन सव बुराइयो में फसे हैं जो सदियो से अपने श्रम पर जीने वाले लोगो को विकृत करती आ रही हैं।

"हम शत्रु हैं सम्पत्ति के—जो कि पूजीवादी दुनिया की नीच और भयानक अधिष्ठात्री है। हम शत्रु हैं—समूचे पाशविक व्यक्तिवाद के, जो कि उसका घोषित धर्म है।"[2]

गोर्की का जीवन आज हमें महान और महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। कारण कि उनका जीवन इस अधिष्ठात्री को देवत्व के पद से हटाने के प्रयास के साथ घने रूप से सम्बद्ध था। गोर्की का जीवन, रूस के मजदूर वर्ग के एक वर्ग के रूप में उदय के साथ सम्वद्ध था। गोर्की का जीवन रूसी मजदूर वर्ग के अतीत के साथ वहुत घनिष्ठ रूप में सम्वद्ध था—उस काल के साथ जो विश्व के इतिहास में अनूठा था, जिस काल में उस वर्ग ने ऊपर उठकर आजादी प्राप्त की, उत्पादन के साधनो में व्यक्तिगत सम्पत्ति को खत्म करने के आधार पर एक नये समाज की रचना की, एक ऐसे समाज की जो वर्गविहीन था और जिसमें पहली वार मानव के रूप में मानव ने अपनी कीमत पहचानी।

गोर्की का जीवन रूस की तीन क्रान्तियो के साथ सम्बद्ध था: १९०५ की क्रान्ति, १९१७ की फरवरी क्रान्ति और १९१७ की अक्तूवर क्रान्ति के साथ। आज की सभा में कई वक्ताओ ने इस वात का जिक्र किया है कि गोर्की लेनिन और स्तालिन के सच्चे और घनिष्ट मित्र थे।

साहित्य और राजनीति*

मैक्सिम गोर्की का निधन—जो कि, मैं समझता हू इस बात से सभी सहमत होंगे, हमारे युग के महानतम कहानी-उपन्यास लेखको में से थे—इतनी गहरी क्षति है कि उसे उनके अपने देश सोवियत सघ की सीमाश्रो से बाहर दूर-दूर तक अनुभव किया गया है। गोर्की स्वय इतने महान साहस, इतनी गहरी सादगी और इतनी सच्ची ईमानदारी के आदमी थे कि उन्हें न केवल उनके अपने देश के लोग ही, वल्कि दुनिया भर के सभी देशो के लोगो का—उन सभी लोगो का जो गोर्की की भाति मानवता के लिए समान सघर्प में जुटे हुए हैं—प्यार प्राप्त हुआ।

पिछले महीनो के भीतर इग्लैड में हमारे तीन या चार लेखको का—और शायद एक या दो *महान* लेखको का—निधन हुआ है। उनके सम्मान में सभाश्रो का कोई आयोजन नही किया गया। किन्तु आज रात हम एक ऐसे आदमी को श्रद्धाजलि अर्पित कर रहे हैं जो दूसरे देश में पैदा हुआ है और हमारे लिए विदेशी है। स्वय अपने देश की सीमाश्रो से बाहर यह इतना प्यारा बन सका, इसका कारण यह था कि उसने अपनी कृतियो में भारी सचाई के साथ, दुनिया के सभी हिस्सो की शोषित जनता की वेदना को, उनकी आशा-आकाक्षाश्रो और विजय पाने की उनकी इच्छा-शक्ति को, व्यक्त किया था। ऐसे कम ही लोग हैं जिन्होंने मानवीय नीचता के विरुद्ध उतनी लगन और उतने साहस से सघर्ष किया, जितना गोर्की ने। ऐसे लोग कठिनाई से ही ढूढे मिलेंगे जिन्होने गोर्की

* जून १९३६ में कौनवे हाल, लन्दन में मैक्सिम गोर्की की स्मृति में हुई एक सभा में दिया गया भाषण। — स०

की भांति, इतनी स्पष्टता से इस सत्य को देखा कि मानवीय नीचता की जड़ें हमारी सभ्यता के साम्पत्तिक ढांचे में जमी हैं।

अपने अन्तिम सार्वजनिक भाषण में, जिसकी सर्वश्री ह्युवर्ट ग्रिफिथ और रैल्फ वेट्स[1] ने आज की सभा में अभी चर्चा भी की है, सोवियत लेखक संघ की पहली कांग्रेस का उद्घाटन करते हुए गोर्की ने कहा था :

"न्यायाधीश की हैसियत से हम फैसला देते हैं इस दुनिया के बारे में जिसे नष्ट होना ही होना है, और मानव की हैसियत से हम ऊंचा उठाते हैं असली मानवता को, क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की मानवता को, उन लोगों की मानवता को जिन्हें इतिहास ने समूची दुनिया को उन सबसे मुक्त करने के लिए आमन्त्रित किया है जो ईर्ष्या, धनलिप्सा तथा उन सब बुराइयों में फंसे हैं जो सदियों से अपने श्रम पर जीने वाले लोगों को विकृत करती आ रही हैं।

"हम शत्रु हैं सम्पत्ति के—जो कि पूंजीवादी दुनिया की नीच और भयानक अधिष्ठात्री है। हम शत्रु हैं—समूचे पाशविक व्यक्तिवाद के, जो कि उसका घोषित धर्म है।"[2]

गोर्की का जीवन आज हमें महान और महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। कारण कि उनका जीवन इस अधिष्ठात्री को देवत्व के पद से हटाने के प्रयास के साथ घने रूप से सम्बद्ध था। गोर्की का जीवन, रूस के मजदूर वर्ग के एक वर्ग के रूप में उदय के साथ सम्बद्ध था। गोर्की का जीवन रूसी मजदूर वर्ग के अतीत के साथ बहुत घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध था—उस काल के साथ जो विश्व के इतिहास में अनूठा था, जिस काल में उस वर्ग ने ऊपर उठकर आजादी प्राप्त की, उत्पादन के साधनों में व्यक्तिगत सम्पत्ति को खत्म करने के आधार पर एक नये समाज की रचना की, एक ऐसे समाज की जो वर्गविहीन था और जिसमें पहली बार मानव के रूप में मानव ने अपनी कीमत पहचानी।

गोर्की का जीवन रूस की तीन क्रान्तियों के साथ सम्बद्ध था : १९०५ की क्रान्ति, १९१७ की फरवरी क्रान्ति और १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति के साथ। आज की सभा में कई वक्ताओं ने इस बात का जिक्र किया है कि गोर्की लेनिन और स्तालिन के सच्चे और घनिष्ट मित्र थे।

उनकी ही भाति उन्होने भी जेल और जलावतनी की यातनाए भोगी। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ से ही गोर्की बोल्शेविको के समर्थक थे। गोर्की स्वय एक आवारा, फैक्टरी मजदूर और रेल-मजदूर का जीवन बिता चुके थे और रूसी मजदूर वर्ग के जीवन में भाग ले चुके थे। अराजकता से भरे एक दौर के बाद गोर्की को बोल्शेविको में और लेनिन के व्यक्तित्व में, एक ऐसी दृढता, सादगी और अजेय विश्वास की झाकी मिली जिससे उन्हें विश्वास हुआ कि वे जार के साम्राज्य का तख्ता पलटने जा रहे हैं। और लेनिन सम्बधी अपने सस्मरणो में गोर्की ने इन गुणो का सार-तत्व प्रस्तुत किया है और उनका वर्णन किया है। गोर्की सदा यह अनुभव करते थे कि ये ही वे गुण हैं जो रूसी राष्ट्र की काया-पलट करेंगे।

अब आइए एक ऐसी समस्या को लें जिसमें हम सबकी गहरी दिल-चस्पी है। समस्या है यह यह कैसे हुआ कि गोर्की, जो रूसी समाज के निम्नतम स्तर से आये थे, रूसी साहित्य क्षेत्र में एकाएक इतने प्रसिद्ध हो गये? मेरी समझ में इस रहस्य का पता लगाया जा सकता है—यदि हम उस काल के रूसी समाज तथा साहित्य पर दृष्टि डालने का प्रयत्न करें। चैखव को लीजिए। उन दिनो रूस के वह महानतम लेखक थे। वह १८८० के काल की भयानक निराशा में से उभरे थे। यह वह समय था जब बुद्धिजीवियो को अपना कोई भविष्य नही दिखाई देता था, जब यह मालूम होता था मानो रूसी समाज की श्रेष्ठतम शक्तिया जारशाही के विरुद्ध व्यर्थ सघर्ष की वेदी पर चढा दी गयी हैं—और चैखव का साहित्य इसी भावना से सराबोर है। तोल्स्तोय भी—गोर्की के प्रसिद्धि प्राप्त करते-करते—ईसाई मत के पूर्ण नकारवाद को अपना चुके थे। किन्तु निराशा के इस वातावरण में गोर्की ने एक नयी ताजगी का सचार किया, समूची रूसी जनता के लिए वह आशा का एक नया सन्देश लाये। और इसी कारण—रूसी राष्ट्र के जीवन में एक नयी शक्ति के रूप में प्रकट होने के कारण—वह रूस के एक कोने से दूसरे कोने तक एकाएक प्रसिद्ध हो गये। उनकी समूची शैली में आप इसका अनुभव कर सकते हैं।

लेखन की कला और टैकनीक की दृष्टि से गोर्की के बारे में यहा

किसी ने कुछ नही कहा। अंग्रेजी अनुवादो में गोर्की का बहुत कुछ खो गया है, किन्तु रूसी लेखक के रूप में गोर्की शक्ति के पुन्ज नजर आते हैं—और यह शक्ति उन लोगो की थी जिनके बीच वह रहते थे। वह हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि आम लोगो की बोलचाल, लोक-साहित्य और जनता में प्रचलित कहानियो में भाषा का सबसे समृद्धतम खजाना मौजूद है, उनमें भाषा और साहित्य की महानतम निधिया निहित हैं। उनका समूचा साहित्य इस बात का प्रमाण है।

गोर्की ने बहुत तेजी से प्रसिद्धि प्राप्त की और रूसी साम्राज्य की साहित्य अकादमी के सदस्य चुने गये, लेकिन उतनी ही तेजी से, जार के सीधे फरमान पर, वह सदस्यता से हटा भी दिये गये। एक लेखक के दमन के इस लज्जास्पद कृत्य के विरोध में, अपने आप को सदा के लिए गौरवान्वित करते हुए, रूस के दो अन्य महानतम लेखको ने भी सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। ये लेखक थे—चैखव और कोरोलैन्को। किन्तु इससे हमारी इस शताब्दी के प्रारम्भिक दिनो के साहित्य जगत का कैसा दयनीय चित्र आखो के सामने आता है! रूसी साहित्य के तीन महानतम प्रतिनिधियो को त्याग-पत्र देने पर बाध्य होना पड़ा (उनमें से एक को तो जबर्दस्ती हटाया गया), और इन्हीं दिनो तोल्स्तोय को पुरातनपथी गिरजे का कोप-भाजन बनना पडा, उन्हें धर्मच्युत किया गया और रूसी साम्राज्य के हर प्रार्थना-घर में उनके खिलाफ घिनौने फतवे पढे जाने लगे! इसी पृष्ठभूमि में गोर्की ने रूसी लेखको को दिखाया कि निरकुशता कितनी ही क्रूर और हिंसक क्यो न हो, उससे लडने के उपायो और साधनों का अभाव नही है, कि १९०५ की भयानक पराजय के बाद भी निराशा की आवश्यकता नही है। इसके बाद, कई वर्षो तक, गोर्की ने प्रवासी जीवन बिताया। किन्तु इस काल में भी, जबकि वह अमरीका तथा अन्य देशो में थे, वह सोशल डैमोक्रैटिक पार्टी के लिए ही काम काम करते रहे। जब वह कैप्री (इटली) में रहने गए तब भी वह निरकुशता को उखाड फेंकने तथा रूसी क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करने में लगे रहे।

आपको याद होगा कि कैप्री में उन्होने क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओ को ट्रेन करने के लिए एक स्कूल चलाया था। पिछले सप्ताह के अन्त में

लन्दन में लेखको की एक कान्फ्रेंस में एच जी वैल्स ने अपने भाषण में टूले स्ट्रीट के तीन दर्जियो[1] के बारे में कुछ ऐसी बातें कही जो अशोभनीय थी। उन्होने कहा कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के भाग्य निर्णायक बन गये हैं। उनकी इस बात का इल्या एहरेनबुर्ग ने करारा जवाब दिया। उन्होने बताया कि उन दिनो जब गोर्की कैप्री में थे तो वह अपने पास एक धातु-मजदूर, एक दर्जी और एक बढई को इकट्ठा करना अपनी शान के खिलाफ नही समझते थे, और उन्हें इस बात का विश्वास था कि ये लोग रूसी साम्राज्य को, जो कि उन दिनो आज के ब्रिटिश साम्राज्य जैसा ही सुदृढ मालूम होता था, उखाड फेंक सकते हैं।

स्कूल चलाने के अलावा इस काल में गोर्की और भी बहुत कुछ करते थे। वह सक्रिय क्रान्तिकारी काम भी करते थे। गोर्की के साथ लेनिन के पत्र-व्यवहार में केवल दार्शनिक समस्याओ का ही नही, बल्कि ऐसी व्यवहारिक समस्याओ का भी भरपूर उल्लेख मिलता है कि किस किस प्रकार गोर्की रूस में उनका अखबार पहुचाने में बोल्शेविको की मदद कर सकते हैं। बोल्शेविक साहित्य को ओदेस्सा पहुचाने में गोर्की ने इटली के जहाजी मजदूर सघ से सम्पर्क स्थापित किया।

'*स्पैक्टेटर*' समाचार-पत्र में श्री ई एच कार का लिखा गोर्की के कामो का विवरण छपा है। मैंने उसे पढा है। इसमें श्री कार ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि कैप्री निवास के काल में दुर्भाग्य से गोर्की ने ऐसे राजनीतिक उपन्यास लिखने शुरू किए जिनके नाम भी अब किसी को याद नही है। आज की सभा में मौजूद लोगो में जो मजदूर भाई हैं, उनसे मैं पूछता हू—क्या आप लोग '*मां*' उपन्यास का नाम भूल गये हैं? खुद रूस से बाहर ऐसे लोगो की सख्या बहुत बडी है जो इस पुस्तक को कभी नही भूल सकते। दुनिया के हर कोने में ऐसे लोग मौजूद हैं जिनकी राजनीतिक दीक्षा 'मा' उपन्यास से ही आरम्भ हुई है। इस पुस्तक की एक और अनूठी विशेषता यह है कि इसने एक अन्य कला-कृति को—'मा' नामक फिल्म को—जन्म दिया है।

राजनीति का मसला गोर्की के नाम से अलग नही किया जा सकता। मगलवार के '*टाइम्स*' पत्र में ब्रिटिश लेखको के प्रश्न पर एक अग्रलेख

छपा था। टाइम्स पत्र बहुधा हमारा सम्मान नही करता है। इस वार का अग्रलेख भी ब्रिटिश लेखकों के एक हिस्से को झिडकने के लिए लिखा गया था। इन लोगो को धिक्कारा गया है कि इन्होने लेखको की सोसायटी को ट्रेड यूनियन काग्रेस से सम्बद्ध करने का प्रस्ताव पेश करने की भद्दी हिमाकत करके अपनी निकृष्ट रुचि का परिचय दिया है। इस प्रस्ताव का, दुर्भाग्यवश जो पास नही हो सका, तात्पर्य क्या था ? ब्रिटिश लेखको की काफी वडी सख्या आज यह अनुभव करती है कि लेखको और मजदूर वर्ग के बीच अधिक घनिष्ठ सहयोग के विना अग्रेजी साहित्य का कोई भविष्य नही है। उनका विचार है कि ब्रिटेन की सास्कृतिक विरासत की सुरक्षा की यही सबसे वडी गारण्टी है। उनका कहना है कि इसीमें भविष्य की महानतम आशा है। इस सप्ताह फिर टाइम्स ने साहित्य सम्बधी चर्चा शुरू की है। वृहस्पतिवार के अक में साहित्य के सम्वध में एक दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया है। इसे प्रतिपादित करने वाले सज्जन हैं श्री चार्ल्स मार्गन, जिनका 'टाइम्स' से घनिष्ठ सम्वध है और जो प्रत्यक्षत इस मत के हैं कि हमारा लेखक समुदाय मौजूदा समाज के सम्पूर्ण ढाचे द्वारा सह मानवो से सुरक्षित तथा दूर रखा जाय। श्री एवलिन वौघ[1] को वह एक पुरस्कार भेंट कर रहे थे। उन्होने कहा "उन्होंने ऐसे पुरस्कारो पर कीचड़ उछाला जाते देखा है, किन्तु होयोर्नेडन[2] के प्रति इस खीज का आधार सदा वही एक शिकायत होती है कोई साहित्यिक या राजनीतिक गुट इसका सचालन नही करता। यदि उनका यह विश्वास होता — जैसा कि कितने ही लोगों का आजकल ईमामदारी के माय विश्वास है — कि कला, यदि वह राजनीति का यत्र नही वनती, तो समय का अपव्यय है—तो निश्चय ही वे होयोर्नेडन कमिटी का समर्थन नहीं करेंगे। किन्तु आज के दिन जवकि सचाई के साथ कहा जा सकता है कि यूरोप की वडी-वडी ताकतो में केवल इग्लैंड और फ्रान्स ही ऐसे देश हैं जहा विचार और भाषण की स्वतत्रता उपलब्ध है, तो यह, उनके विचार में, एक मूल्यवान वात होगी कि साल में एक वार उन्हे किसी पुस्तक को पुस्तक के रूप में उसके गुणो के आधार पर, न कि इस वात पर कि वह किसी मौजूदा या आकाक्षित डिक्टेटरशिप

जिसमें कि उन्होंने जन्म लिया था। तीनों ने 'सोसायटी' में अपना स्थान बनाने का रास्ता अपनाया। और आज हमारे देश में कोई लेखक सम-झौता परस्तों को गले लगाकर और अपने-आप को संस्कृति के उन अभिजात वर्गीय और धनी-मानी व्यापारियों के गुट के हाथों में—जो समझते हैं कि हमारे बौद्धिक जीवन की इजारेदारी उन्हीं के हाथों में है—सौंप कर ही ऐसा कर सकता है। मगर आप इन तीनों के आत्म-चरित पढ़ें तो आप देखेंगे कि इन्होंने गरीबी के खिलाफ और दम्भ के खिलाफ भयानक संघर्ष किया है, और आप यह दुर्भाग्य भी देखेंगे कि दम्भ ने इन तीनों पर विजय प्राप्त की। यहां आप पिछली दो पीढ़ियों में हमारे बौद्धिक जीवन की अत्यन्त दयनीय दशा का—शासक वर्ग द्वारा हमारे देश में सांस्कृतिक जीवन के ध्वंस का—चित्र देख सकते हैं।

मैं समझता हूं कि यह एक बहुत बड़ी और शानदार चीज है कि हमारे युवक लेखक वेल्स, लारेन्स और मिडल्टन मुरी द्वारा अपनाये मार्ग को त्याग रहे हैं। वे हमारे देश के बौद्धिक जीवन पर इस पतित सामाजिक गुट की इजारेदारी कायम नहीं होने देंगे।

आलोचकों का कहना है कि राजनीति ने ही गोर्की को नष्ट कर दिया। वे कहते हैं—देखो न, १९१७ के बाद गोर्की ने क्या किया। तात्पर्य यह कि उन्होंने कोई सृजनात्मक कार्य नहीं किया। किन्तु १९१७ के बाद गोर्की का सृजनात्मक कार्य गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों ही दृष्टि से, किसी भी योरपीय लेखक के उस काल के कार्य से कम नहीं है। सामाजिक अर्थ में उनका कार्य पहले से ही अमरत्व के हकदार उनके नाम को अपूर्व गौरव प्रदान करता है। पहले के कामों की उनके इस काम से कोई तुलना नहीं की जा सकती। गोर्की ने एक नयी संस्कृति के लिए रास्ता तैयार किया। समाजवाद की स्थापना के बाद, इस संस्कृति का आगमन अवश्यम्भावी था। उनका सामाजिक कार्य केवल सुरक्षात्मक नहीं, बल्कि तत्वतः सृजनात्मक था। फिर, उनका यह काम जो उन्होंने १९२८ में अन्तिम रूप से सोवियत संघ लौट आने के बाद किया, समूचे रूसी साहित्य के पुनर्गठन तथा सोवियत लेखकों को एक महान लेखक संघ में गूंथने का वृहत कार्य था। यह ऐसा कार्य था जिसके

लिए देश का प्रत्येक लेखक उनके नाम का कृतज्ञता के साथ स्मरण किये बिना नही रह सकता ।

रैल्फ वेट्स ने अपने भाषण में गोर्की के एक मौलिक कार्य का, गोर्की के सुझाव से प्रेरित और उनके ही निर्देशन में *श्वेत सागर नहर* के सामूहिक लेखन का उल्लेख किया है। लेकिन यह तो उस महान कार्य का एक अश मात्र ही है जो गोर्की की पहल कदमी पर उठाया गया था। इस काम के पूरा होने पर सभी फैक्टरियो तथा कल-कारखानो का, सोवियत सघ के सभी बडे फार्मों का, समाजवाद के सजीव निर्माण का इतिहास बन जायगा। इसका मकसद कोई एक महान साहित्यिक कृति तैयार करना नही, बल्कि समाजवाद के निर्माण का इतिहास तैयार करना है, और इस सामूहिक इतिहास को तैयार करने के लिए पहली बार देश की श्रेष्ठतम रचनात्मक ताकतो को हाथ बटाने के लिए आगे लाया गया है। इस भीमाकार कार्य का श्रेय गोर्की को ही प्राप्त है। फिर, गृह युद्ध का — रूसी क्रान्ति के वीरतापूर्ण काल का — इतिहास लिखने और उसका सयोजन करने में भी गोर्की ने ही सबसे पहले कदम उठाया था। और इस इतिहास के प्रथम खण्ड को पढने से साफ पता चल जाता है कि कई परिच्छेदो को लिखने में गोर्की और स्तालिन ने मिलकर काम किया है।

अन्त में मैं गोर्की के निधन पर दो प्रकार की प्रतिक्रियाओ का उल्लेख करना चाहूगा। पहली प्रतिक्रिया जार्ज बरनार्ड शा की प्रतिक्रिया है। सोवियत सरकार को भेजा गया शा का सन्देश निराशावाद और पराजय का सन्देश है। शा ने लिखा — बूढे लोग सब मरते जा रहे हैं, उनके जीने का अब कोई उपयोग भी तो न था। सोवियत सघ में अतीत के बडे नामो को लेकर चिन्ता करने की जरूरत क्या — उन्हे भविष्य को सम्भालना है। लेकिन अतीत के बिना भविष्य के बारे में नही सोचा जा सकता, और गोर्की का अतीत मजदूर वर्ग का अतीत था, उस मजदूर वर्ग का अतीत जिसने क्रान्ति को सम्भव बनाया। सोवियत सघ आज एक ऐसे मनुष्य की मृत्यु का शोक मना रहा है जिसे वे, इस बात को इतनी गहराई से अनुभव करने के कारण ही, प्यार करते थे।

दूसरी प्रतिक्रिया, जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हू, लन्दन की एक मजदूरनी की है— फैक्टरी में काम करने वाली एक लडकी की। समाचार-पत्रो में उसने गोर्की के मातम का विवरण पढा था। उसने कहा "उस आदमी की मृत्यु कितनी दुखद है जिसमे इतने लोग प्यार करते हो।" कितनी सच बात कही उसने। जो आदमी जनता का इतना प्यारा हो, उसके लिए मरना कितना दु खद है।

मनुष्य को जीवित रहना चाहिए इसलिए कि वह उन चीजो को मूर्त होता हुआ देख सके जिनके लिए वह जिया, इसलिए कि वह जनता, जिसके साथ कि वह सम्बद्ध था, हर क्षण उसके जीवन की पुनर्रचना करती रहती है।

साथ ही यह बात भी ध्यान में रखिए कि गोर्की के लिए प्रदर्शित यह प्रेम सोवियत सघ के भविष्य के लिए अत्यत उपजाऊ होगा। प्रथम समाजवादी राज्य के लिए वह अनेकानेक तथा और भी महान गोर्कियो को, मानव आत्मा के कुशल अभियन्ताओ को, जन्म देगा।

टिप्पणियां

टिप्पणियां

पृष्ठ एक

१ शार्शों दा जेस्ट मध्य-युगीन फ्रांसीसी महाकाव्य ।

पृष्ठ दो

१ त्रिमालचियो के भोज रोमन लेखक पेत्रोनिया (पहली शताब्दी) की रचना "सातिरिकोन" का वह भाग जिसमें लेखक तत्कालीन समाज के भ्रष्टाचार का मजाक उडाता है ।

२ डाफनिस और क्लो . प्राचीन यूनानी लेखक लोग का उपन्यास ।

३ फार्स्टर (एडमण्ड मॉर्गन फार्स्टर) अंग्रेज आलोचक तथा लेखक ।

पृष्ठ छः

१ जॉयस : (जेम्स जॉयस, १८८२–१९४१) अंग्रेज लेखक व उपन्यासकार ।

२ रेबेका वेस्ट · समकालीन अंग्रेज लेखिका ।

३ अल्डस हक्सले : समकालीन अंग्रेज लेखक व उपन्यसकार ।

पृष्ठ सात

१ एडमण्ड कैम्पियोन : प्रसिद्ध अंग्रेज जेस्यूट उपदेशक जिसे एलिजेबेथ के राज्यकाल में विधर्मी होने के अभियोग पर मृत्यु-दण्ड दिया गया था ।

पृष्ठ आठ

१ सिगमण्ड फ्राएड : (१८५६–१९३९) दार्शनिक, डाक्टर तथा मनोविज्ञान-शास्त्री ।

पृष्ठ तेरह

१ मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत ग्रंथावली, भाग १२, पृष्ठ ६–७

पृष्ठ तेरह

१ मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत पत्र, १९५३, पृष्ठ ४२२–४२३

पृष्ठ पन्द्रह

१ मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत पत्र, १९५३, पृष्ठ ४२३–४२४

पृष्ठ अट्ठारह

१ मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत पत्र, १९५३, पृष्ठ ४२३–४२४

पृष्ठ उन्नीस

१ **फालस्टाफ**—शेक्सपीयर के नाटक "हेनरी चतुर्थ" और "मेरी वाइव्स आफ विन्डसर" का मसखरा पात्र, **टौम जोन्स**—फील्डिंग के उपन्यास "टौम जोन्स की कहानी" का नायक, **जूलियन सोरेल**—स्टेन्ढाल के उपन्यास "लाल और काला" का नायक, **मौशिये द चार्लस**—फ्रांसीसी लेखक प्रूस्त के विशाल उपन्यास "खोए हुए समय की खोज" नामक उपन्यास का पात्र।

पृष्ठ बीस

१ **थियोफिल गोतिये** · (१८११–१८७२) फ्रासीसी कवि, उपन्यासकार और साहित्यालोचक।

२ **जेम्स मार्क बाल्डविन** . "दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक कोश" (दो भाग) का लेखक। यह कोष १९१८–१९२० में न्यूयार्क से प्रकाशित हुआ था।

पृष्ठ इक्कीस

१ **नाओमी मिचीसन** समकालीन अंग्रेज लेखिका जो आज-कल शान्ति के सघर्ष में सक्रिय भाग ले रही है।

२ कीट्स कृत "हाईपीरियन," भाग ३ मे।

पृष्ठ तेईस

१ एरासमस : (१४६६–१५३६) रनैसा काल का महान मानवतावादी।

पृष्ठ पच्चीस

१ लेनिन, दार्शनिक नोटवुक से।

२ लेनिन, दार्शनिक नोटवुक से।

पृष्ठ छब्बीस

१ युलिसेस—जेम्स जायस का प्रसिद्ध उपन्यास, स्वान्स वे—प्रूस्त के उपन्यास "खोए हुए समय की खोज" का दूसरा भाग, हेनरियाद—वाल्तेयर का महाकाव्य, इडिल्स ग्राफ दि किंग—राजा ग्रार्थर ग्रौर उसकी "गोल मेज" के सामन्तों की दन्त कथा पर ग्राधारित टेनिसन की काव्य-माला।

पृष्ठ अट्ठाइस

१ शार्शो द रोलां फ्रासीसी वीर-काव्य।

२ शार्लेमान, रोलां, ग्रोलिवर, गानेलो—शाशो द रोला के पात्र।

३ त्रिस्तां ग्रौर इसेउल्त मध्य-कालीन सामन्ती उपन्यास।

पृष्ठ उनतीस

१. मार्क्स ग्रौर एंगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली, भाग १२, १, पृष्ठ १७३।

पृष्ठ तीस

१ पेनिलोप · ग्रोडिसस की पत्नी।

२ तेलेमाकस ग्रोडिसस का पुत्र।

पृष्ठ तेंतीस

१ मार्क्स ग्रौर एगेल्स, कम्युनिस्ट घोषणापत्र, १९५३, पृष्ठ ३५।

२ रस्किन · (जान रस्किन, १८१९–१९००) अंग्रेजी कला मर्मज्ञ, उस पथ के नेता जिसका मकसद रफाइल के पूर्व की कला का (ग्रर्थात ग्रादि-रनैसा काल की कला का) पुनर्उत्थान करना था।

३ **विल्यम मोरिस :** (१८३८–१८९६) अंग्रेज लेखक और कलाकार, "न्यूज फ्रम नोव्हेयर" नामक उपन्यास के लेखक तथा रफाइल के पूर्व की कला के प्रतिपादको के एक प्रमुख प्रतिनिधि।

पृष्ठ चौंतीस

१. **विलबौके .** द्यूमर्सन और वारेन द्वारा रचित फ्रासीसी पुस्तक "पाखण्डी" (१८३१) का पात्र। चालाक और अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेने वाले व्यक्ति का द्योतक।

२ **इन्स्टीच्यूट ·** विज्ञान अकादमी।

पृष्ठ पैंतीस

१ **गेरार्ड द नेरवाल :** गेरार्ड लाब्रूइन (१८१८–१८५५) का उपनाम, रोमाण्टिक पथ के कवि, अनेक कविता सग्रहो और साहित्यिक इतिहास पर निबन्धो के रचियता।

२ **रिम्बौ** (आर्थर रिम्बौ, १८५४–१८९१) पेरिस कम्यून में भाग लेने वाला फ्रासीसी कवि। कम्यून के पतन के बाद आचार-भ्रष्ट होकर साहित्य त्याग दिया और अफ्रीका में जाकर व्यापार में जुट गया।

पृष्ट छत्तीस

१ **गोगा ·** (पॉल गोगा, १८४८–१९०३) सुप्रसिद्ध फ्रासीसी कलाकार, जो अनेक वर्षो तक पूर्व में आकर ताहिती और डोमिनिकन द्वीप-समूह में रहे।

२ **सीजा ·** (पॉल सीजा, १८३९–१९०६) प्रसिद्ध फ्रासीसी कलाकार।

३ **वान गौ ·** (विन्सेन्ट वान गौ, १८५३–१८९०) फ्रासीसी कलाकार, जिन्होंने पागल होकर आत्महत्या कर ली।

पृष्ठ अड़तीस

१ मार्क्स और एगेल्स, कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, १९५३, पृष्ठ ३५–३६।

पृष्ठ चालीस

१. मेलोरी : (थॉमस मेलोरी) पन्द्रहवी शताब्दी का अग्रेज लेखक, "मोर्त द' आर्थर" नामक उपन्यास के रचियता।

२. पेस्टन के पत्र पन्द्रहवी शताब्दी का अग्रेजी पत्र-साहित्य। यह सग्रह पेस्टन परिवार से प्राप्त हुआ था।

३ ग्राएल : पवित्र ग्राएल, किवदन्ती के अनुसार वह प्याला जिससे ईसा मसीह ने गुप्त सध्या को पान किया था, मध्य-कालीन किवदन्ती के अनुसार यही वह प्याला था जिसमें क्रॉस पर कीलों से जडे गए ईसा मसीह का रक्त इकट्ठा किया गया था। बाद में राजा आर्थर के वीर इसे इग्लैण्ड ले आये और वहा राजा आर्थर के गोल मेज के वीरों को यह भेंट कर दिया गया। रोमाण्टिक पथ के अनेक लेखको ने इस किवदन्ती को अपने लेखन का विषय बनाया है।

४ यूफिअस अग्रेज लेखक जॉन लिली (१५५४–१६०६) कृत उपन्यास। इस उपन्यास की कृत्रिम रूप से जटिल तथा आडम्बरपूर्ण शैली ने ही अग्रेजी भापा में "यूफिमिज्म" शब्द को जन्म दिया।

५ आर्काडिया अग्रेज लेखक फिलिप सिडनी (१५५४–१५८६) का उपन्यास।

६ फेयरी क्वीन . अग्रेज कवि एडमण्ड-स्पेन्सर (१५५२–१५९९) की लिखी हुई कविता जो राजा आर्थर और उनके गोल मेज के वीरो की मध्य-कालीन कथा पर आधारित है। यह कविता रानी एलीजेवेथ को समर्पित की गई थी।

पृष्ठ इकतालीस

१ जाक्वे ला फँटेलिस्त . दिदेरो द्वारा रचित दार्शनिक कहानी।

२ ला रूज ए ला न्वायर · "लाल और काला" नामक स्टेन्ढाल का उपन्यास।

३ ला एजूकेशन सेंटिमेंटल : "इन्द्रियो की शिक्षा" नामक फ्लोबर्ट का उपन्यास।

४ वुदरिंग हाइट्स एमिली ब्रान्ते (१८१८–१८४८) कृत प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास, एमिली ब्रान्ते प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास लेखिका शार्लोट ब्रान्ते की बहन थी।

५ दि वे आफ आल फ्लैश. अंग्रेज लेखक सेमुअल बटलर (१८३५–१९०२) कृत उपन्यास।

पृष्ठ चवालीस

१. हैनरी जेम्स. (१८४३–१९१६) अमरीकी लेखक, अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के रचियता।

पृष्ठ पैंतालीस

१ वारेन हेस्टिंग्स: (१७३२–१८१८) भारतीय जनता के दमन के लिए कुख्यात, भारत का प्रथम अंग्रेज गवर्नर-जनरल (१७७३–१७८४)।

पृष्ठ छयालीस

१ मौल फ्लैण्डर्स डेफो के उपन्यास की नायिका।

पृष्ठ सैंतालीस

१ रेस्टिफ द ब्रिटोन: (१७३४–१८०६) फ्रासीसी लेखक, रूसो का अनुयायी, अनेक उपन्यासो का रचियता जिनमें "मि निकोल्स और मानव हृदय की सच्चाई" नामक आत्म-कथात्मक उपन्यास सर्व-प्रसिद्ध है। यह उपन्यास १६ जिल्दों में लिखी गयी है।

पृष्ठ उनचास

१. चचा टोबी और ट्रिम: स्टर्न के उपन्यास "ट्रिस्ट्राम शेन्डी" के पात्र।

पृष्ठ पचास

१. एग्डोन हीथ: अंग्रेज उपन्यासकार थामस हार्डी के अनेक उपन्यासो का घटना-स्थल।

२ **कोनराद का प्रशान्त** अंग्रेज लेखक जोसफ कोनराद (१८५७–१९२४) की समुद्री कहानियो और उपन्यासो का उल्लेख है। इन कहानियों का घटना-स्थल प्रशान्त महासागर है।

पृष्ठ बावन

१ **जौन वेस्ले** (१७०३–१७९१) अंग्रेज धर्म-प्रचारक, जिसने मैथाडिज्म की नीव डाली। इस धार्मिक पथ ने गिरजे के सस्कारो को ठुकराया और औद्योगिक क्रान्ति के दौरान में यह इग्लैण्ड की आम जनता के बीच खूब फैला।

२ शताब्दी के अन्त के फ्रासीसी कवि।

३ **एलिजेबेथ कालीन** रानी एलिजेबेथ के शाशन-काल में रनैसा के अंग्रेजी नाटककारो का दल।

पृष्ठ चौवन

१ **जेन आस्टिन** · (१७७५–१८१७) "एम्मा" तथा "गौरव और पूर्वग्रह" नामक प्रसिद्ध उपन्यामो की लेखिका।

पृष्ठ छप्पन

१ **१६८८** तथाकथित महान क्रान्ति का वर्ष। अभिजात वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच राजनीतिक समझौता, जिसके साथ १८ वी शताब्दी की अंग्रेजी बुर्जुआ क्रान्ति सम्पन्न हुई।

पृष्ठ साठ

१ **नन्ही नेल** डिकेन्स के एक उपन्याम की पात्री।

२ **सात घड़ियालों वाला नगर** लन्दन नगर का वह भाग जहा गरीब लोग बसते हैं।

पृष्ठ बासठ

१ **रौचेस्टर और जेन एयर** शार्लोट ब्रान्ते कृत "जेन एयर" नामक उपन्यास के पात्र।

२ बोर्गिया रोमन पोप अलेक्जेण्डर बोर्गिया (१४३४–१५०३)। उसके काल में कैथलिक गिरजे के सर्वोच्च इदारे कल्पनातीत भ्रष्टाचार और गिरावट के लिए कुख्यात थे।

३ फौली बर्जे पेरिस का एक थिएटर।

पृष्ठ बानवे

१ मार्क्स और एगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली।

२ मार्क्स और एगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली।

३ ब्लूम जेम्स जायस के उपन्यास "युलीसस" का पात्र।

४ डाएडालस : "युलीसेस" का एक पात्र।

५ मार्लो · जोसेफ कोनराद की अनेक कृतियो का पात्र।

पृष्ठ चौरानवे

१ मि पौली एच जी वेल्स के उपन्यास "मि पौली का इतिहास" का नायक।

पृष्ठ छियानवे

१ हेजटिल (विल्यम हेजलिट, १७७८-१८३०) अग्रेज साहित्यिक और रगमचीय आलोचक। चौसर और शैक्सपीयर की कृतियो की इन्होंने व्याख्या की।

पृष्ठ एक सौ दो

१ जूल्स रोमँ आधुनिक फ्रांसीसी लेखक।

२ सिलीन आधुनिक फासीसी लेखक।

पृष्ठ एक सौ तीन

१ मार्क्स और एगेल्स, पत्र-व्यवहार।

पृष्ठ एक सौ चार

१ मार्क्स और एगेल्स, कला पर।

पृष्ठ एक सौ पाच

१. मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली ।

२ टेन्डेन्ज रोमन . उद्देश्यपरक उपन्यास ।

३ मार्क्स और एंगेल्स, पत्र व्यवहार ।

पृष्ठ एक सौ छः

१. मार्क्स और एंगेल्स, पत्र-व्यवहार ।

२ मार्क्स और एंगेल्स, पत्र-व्यवहार ।

पृष्ठ एक सौ सात

१ सर्वहारा साहित्य · फौक्स का तात्पर्य अन्य देशों के समसामयिक प्रगतिशील साहित्य से है ।

पृष्ठ एक सौ आठ

१. मालरो . आधुनिक फ्रासीसी लेखक । शताब्दी के तीसरे दशक में इन्होंने "जन मोर्चा" आन्दोलन में भाग लिया और एक समय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे । वाद में कम्युनिस्ट पार्टी से विमुख हो गये ।

२ राल्फ बेट्स वेट्स के उपन्यास "बुरे आदमी" और "जैतून की झाडी" से तात्पर्य है ।

३ जौन डौस पैसोस : आधुनिक अमरीकी लेखक ।

४. काल्डवेल . आधुनिक अमरीकी लेखक ।

पृष्ठ एक सौ सोलह

१ वेस्लेयान के खान-मजदूर : फौक्स का तात्पर्य मैथॉडिस्ट पथ से है । इस पथ को इग्लैण्ड के खनिक इलाकों में ही मुख्यत समर्थन प्राप्त हुआ ।

पृष्ठ एक सौ अट्ठारह

१ मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली ।

२ एल्मर राइस : आधुनिक अमरीकी नाटककार ।

पृष्ठ एक सौ इक्कीस

१. **हिटलर का सत्तापहरण** जर्मनी में प्रजातन्त्र का अन्त और फासिस्त राज की स्थापना।

पृष्ठ एक सौ छब्बीस

१. **मेफिस्टोफीलियाई :** मेफिस्टोफिलिस जर्मन दन्तकथा का शैतान था जिसके सन्मुख फॉस्ट ने आत्म-समर्पण किया।

२ **फॉस्ट** गेटे कृत नाटक का नायक।

पृष्ठ एक सौ सत्ताइस

१ १९२३ . वह विद्रोह जो १९२३ में बल्गारिया में हुआ था। इस विद्रोह का सगठन कम्युनिस्ट पार्टी ने किया था, जिसका नेतृत्व दिमित्रोव और कोलारोव कर रहे थे। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी शक्तियो का सहारा लेकर सरकार ने इस देश-व्यापी विद्रोह को कुचल दिया था।

पृष्ठ एक सौ उनतीस

१. दिमित्रोव अब ससार में नही रहे। उनकी मृत्यु १९४९ में मॉस्को में हुई। मृत्यु से पहले वह अपने देश बल्गारिया को स्वतत्र और समाजवाद के पथ पर अग्रसर होता हुआ देख सके।

पृष्ठ एक सौ चालीस

१ **बी. बी. सी** इग्लैण्ड की आकाशवाणी।

२ **पोर्ट लैण्ड प्लेस :** लन्दन का वह मुहल्ला जहा बी बी सी की इमारत है।

पृष्ठ एक सौ सैंतालीस

१ **डेनगेल्ट के श्रीमन्त :** ब्रिटेन पर हमलो को बन्द करने के एवज में ९९१ ई० में डेन राजा एथिलरेड द्वितीय द्वारा लगाए गए कर को वसूल करने वाले श्रीमन्त। बाद में इस कर ने युद्ध कर का रूप धारण कर लिया।

पृष्ठ एक सौ अडतालीस

१ यह आक्रमण १९३६ में हुआ था।

पृष्ठ एक सौ इक्यावन

१ मार्क्स और एगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली।

२ मार्क्स और एगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली।

पृष्ठ एक सौ बावन

१ मार्क्स और एगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली।

पृष्ठ एक सौ उनसठ

१ ब्लोच (जा रिचर्ड ब्लोच, १८८४–१९४७) फ्रासीसी लेखक और प्रचारक, फासिज्म-विरोधी युद्ध में इन्होने बढ-चढ कर भाग लिया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान में फ्रास की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने।

पृष्ठ एक सौ इकसठ

१ मार्क्स और एगेल्स, सग्रहीत ग्र थावली।

साहित्यिक लेख

पृष्ठ एक सौ पैंसठ

१ विश्व लेखक कांग्रेस १९३५ से फासिज्म से सस्कृति की रक्षा के लिए यह लेखक सम्मेलन पेरिस मे हुआ था।

पृष्ठ एक सौ छयासठ

१ १४ जुलाई १४ जुलाई १९३५ को पेरिस में जन-मोर्चे की ओर से एक विराट प्रदर्शन हुआ।

२ ऐम्स्टर्डम-प्लेयेल आन्दोलन . ऐम्स्टर्डम में हुआ युद्ध-विरोधी सम्मेलन जिसके सगठनकर्ताओ में बारबूस भी थे।

पृष्ठ एक सौ अड़सठ

१ क्लार्ते · प्रगतिशील पत्रिका, जिसका प्रकाशन इसी नाम के

साहित्यिक दल द्वारा इस शताब्दी के तीसरे दशक में होता था। इस दल में यूरोप के महानतम लेखक शामिल थे।

२ मॉन्दे प्रगतिशील फ्रासीसी दैनिक पत्र, जिसका प्रकाशन हमारी शताब्दी के तीसरे दशक में वारबूस के सम्पादकत्व में होता था।

वारबूस की कृतियों में "ले बूरो" (जल्लाद) शीर्षक एक लेख सग्रह और "फे दीवर्स" (तथ्य) नामक एक कहानी सग्रह भी शामिल हैं।

पृष्ठ एक सौ एकहत्तर

१ रैल्फ बेट्स आधुनिक अग्रेज लेखक।

२ सोवियत लेखकों की प्रथम अखिल सघीय काग्रेस, १९३४।

पृष्ठ एक सौ चौहत्तर

१ टूले स्ट्रीट के दर्जी · व्यग्य वाक्य जिससे ऐसे लोगो का बोध होता है जो सख्या में बहुत कम होते हुए भी सारी जनता का प्रतिनिधित्व करने का दम भरते हैं। यह मुहावरा एक तथाकथित एतिहासिक घटना पर आधारित है, जिसके अनुसार टूले स्ट्रीट, लन्दन के तीन दर्जियों ने पार्लिमेंट के नाम एक प्रार्थना-पत्र भेजा था, जिसका आरम्भ इस प्रकार होता था, "हम, इग्लैड के लोग .."

पृष्ठ एक सौ पचहत्तर

१ वौघ · आधुनिक अग्रेज लेखक।

२ होथोर्नडन · साहित्यिक पुरस्कार जो अमरीकी लेखक होथोर्न के सम्मान में प्रचलित किया गया।

पृष्ठ एक सौ छियत्तर

१ तुर्की कवि · शिनासी इब्राहीम (१८२७–१८७१)। "कवि का विवाह" नामक प्रथम तुर्की हास्य-नाटक के लेखक। इस नाटक में तत्कालीन तुर्की समाज का व्यग्यात्मक चित्र है।

२ मिडल्टन मुरे आधुनिक अग्रेज लेखक और आलोचक।

३ डी एच लारेंस · (१८८५-१९३०) अग्रेज कवि, लेखक और उपन्यासकार।